अप्रैल –2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 । अंक – 4 । ₹ – 25 प्रति । ₹ – 300 वार्षिक

गुण–ग्राहक दृष्टि को जाग्रत कीजिए
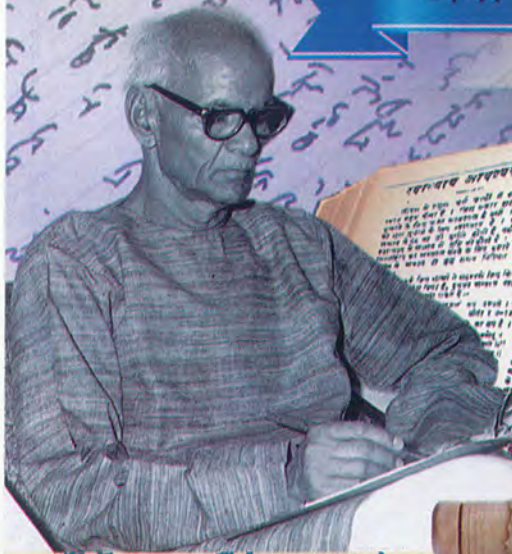
जिसके दोष देखने को हम बैठते हैं उसके दोष–ही–दोष दिखाई पड़ते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस प्राणी या पदार्थ में दोष–ही–दोष भरे हुए हैं, बुराइयाँ–ही–बुराइयाँ उसमें संचित हैं। पर जब गुण–ग्राहक दृष्टि से निरीक्षण करने लगते हैं तो हर प्राणी में, हर पदार्थ में कितनी ही अच्छाइयाँ, उत्तमताएँ, विशेषताएँ दीख पड़ती हैं।

वस्तुत: संसार का हर प्राणी एवं पदार्थ तीन गुणों से बना हुआ है। उसमें जहाँ कई बुराई होती हैं वहाँ कई अच्छाइयाँ भी होती हैं। अब यह हमारे हाथ में है कि उसके उत्तम तत्त्वों से लाभ उठाएँ या दोषों को स्पर्श कर दु:खी बनें। हमारे शरीर में कुछ अंग बड़े मनोहर होते हैं, पर कुछ ऐसे कुरूप और दुर्गंधित हैं कि उन्हें ढके रहना ही उचित समझा जाता है।

इस गुण–दोषमय संसार में से हम उपयोगी तत्त्वों को ढूँढ़ें, उन्हें प्राप्त करें और उन्हीं के साथ विचरण करें तो हमारा जीवन सुखमय हो सकता है। बुराइयों से शिक्षा ग्रहण करें, सावधान हों, बचें और उनका निवारण करने का प्रयत्न करके अपनी चतुरता का परिचय दें तो बुराइयाँ भी हमारे लिए मंगलमय हो सकती हैं। चतुर वैद्य वह है, जो विषों को शोधन और मारण करके अमृतोपम औषधि बना लेता है, चतुर मनुष्य वह है, जो बुराइयों से भी लाभ प्राप्त कर लेता है, गुण–ग्राहक दृष्टि को जाग्रत करके हम हर स्थिति से लाभ उठा सकते हैं।

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
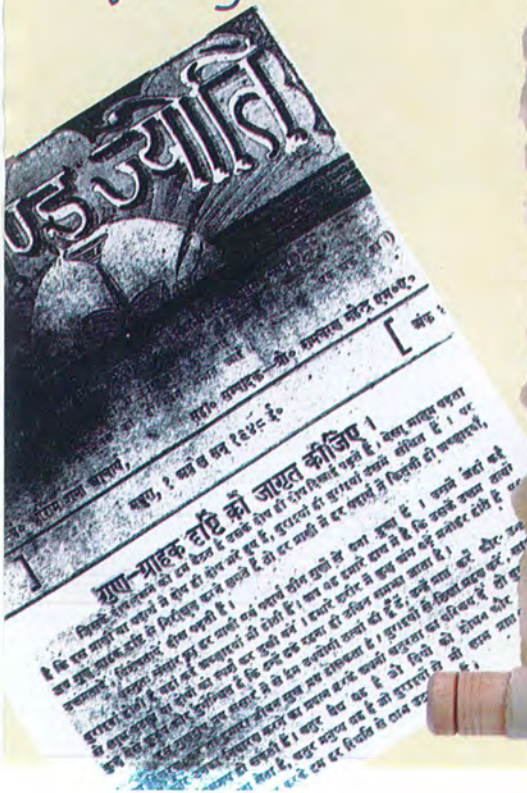
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	04
अप्रैल	:	2023
चैत्र-वैशाख	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.03.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

आत्मदेवता

इस संसार में ऐसे देवताओं की संख्या असीमित हैं, जिन्हें आज तक किसी ने देखा शायद न हो, अनेकों ऐसे भी होंगे, जिन्हें कुछ लोग मानते होंगे, पर अनेकों नहीं। इसके साथ ही अनेकों के पूजा-विधान में भी एकरूपता या मतैक्य दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिए पूजा-उपासना के क्षेत्र में विरोधाभासों, विग्रहों की कमी नहीं है।

परंतु परमपूज्य गुरुदेव ने हमारा परिचय एक ऐसे देवता से कराया, जो सभी तरह के विग्रहों से परे भी है और जिसकी उपासना सम्यक तरीके से करने पर उसका अनुग्रह एवं वरदान सुनिश्चित हो जाता है। उन देवता का नाम है—आत्मदेव। पूज्य गुरुदेव ने कहा कि जो भी अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत बना पाते हैं और जो भी अपने चिंतन, चरित्र, व्यवहार का परिशोधन कर पाते हैं—उनके ऊपर आत्मदेव की अनुकंपा सुनिश्चित रूप से बरसती है।

आत्मदेव की उपासना करने के लिए आवश्यकता एक ही बात की है कि हम अपनी भावनाओं, आस्थाओं एवं मान्यताओं का अहर्निश परिष्कार करते चलें। जिस-जिस मात्रा में हमारे व्यक्तित्व का परिष्कार होता जाता है, हम उतना ही आत्मदेव की कृपा एवं अनुग्रह के अधिकारी बनते जाते हैं। जगाना हो तो अपने भीतर के देवता को जगाना ही श्रेष्ठ है, साधना हो तो अपने मन को साधना ही श्रेष्ठ है और बनाना हो तो अपना व्यक्तित्व बनाना ही श्रेष्ठ है। यही आत्मदेव की उपासना का मूलमंत्र है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

हमारे तीर्थ सच्चे देवालय

अप्रैल-मई, 2023 के पर्व-त्योहार

शनिवार	01 अप्रैल	कामदा एकादशी	सोमवार	01 मई	मोहिनी एकादशी
मंगलवार	04 अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती	शुक्रवार	05 मई	बुद्ध पूर्णिमा
गुरुवार	06 अप्रैल	हनुमज्जयंती	शनिवार	07 मई	टैगोर जयंती/ नारद जयंती
गुरुवार	13 अप्रैल	वैशाखी			
शुक्रवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती	सोमवार	15 मई	अपरा एकादशी
रविवार	16 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी	शुक्रवार	19 मई	वट सावित्री व्रत
शनिवार	22 अप्रैल	शिवाजी/ परशुराम जयंती	गुरुवार	25 मई	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	25 अप्रैल	शंकराचार्य जयंती	मंगलवार	30 मई	गायत्री जयंती/महाप्रयाण दिवस पू०गु०/ गंगा दशहरा
बुधवार	26 अप्रैल	सूर्य षष्ठी			
गुरुवार	27 अप्रैल	गंगा सप्तमी	बुधवार	31 मई	निर्जला एकादशी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। ***—संपादक***

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
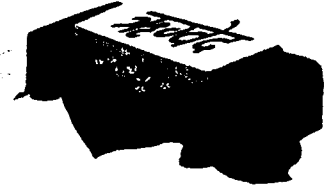
ऋग्वेद भारतीय वैदिक वाङ्मय का आधारभूत ग्रंथ है। आध्यात्मिक ज्ञान-संपदा का शिखर होने के अतिरिक्त सभी ज्ञान की धाराओं का उद्गम वैदिक साहित्य को कहा जा सकता है। वैदिक ज्ञान से ही भारतीय संस्कृति एवं भारतीय चेतना को विस्तार प्राप्त हुआ है।

ऋग्वेद में वर्णित ज्ञान-संपदा का एक प्रमुख अंग उसमें आई देवताओं की स्तुतियाँ हैं। जिन देवताओं का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, उनका संबंध सीधे ही सृष्टि के निर्माण से हो जाता है। अब, जब हम सृष्टि के उद्गम के पर्व को मना रहे हैं तो इन देवताओं का स्मरण करना और ऋग्वेद में उनकी उपस्थिति के विषय में चिंतन करना अनिवार्य हो जाता है।

ऋग्वेद में जिन देवताओं के नाम मिलते हैं, उनमें धाता, त्वष्टा, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ एवं प्रजापति प्रमुख हैं। धाता को भगवान सूर्य, चंद्र, धरती, अंतरिक्ष तथा द्युलोक का निर्माता माना गया है। इसीलिए ऋग्वेद में ऋषि कहते हैं—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—*ऋग्वेद-10/190/3*

इसी तरह से ऋग्वेद में त्वष्टा को समस्त प्राणियों को रूप से संपन्न करने वाला माना गया है तो वहीं विश्वकर्मा को प्रजापति के समकक्ष मानते हुए ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं—**प्रजापतिवै विश्वकर्मा**। हिरण्यगर्भ समस्त प्राणिजगत् को धारण करने वाले देवता माने गए हैं। इसीलिए प्रसिद्ध ऋग्वैदिक सूक्त में कहा गया है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ —*ऋग्वेद 10/121/1*

कई बार प्रथम बार वेद पढ़ने वाले ऐसा सोचते हैं कि ये बहुदेववाद की परंपरा है, पर वे भूल जाते हैं कि यही ऋग्वेद '**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' के उद्घोष को भी जन्म देता है। यहाँ तक कि ऋग्वेद के ऋषि अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं—

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥

—*ऋग्वेद 5/3/1*

अर्थात हे अग्नि! उत्पत्ति के समय तुम वरुण हो, समृद्ध होने पर तुम मित्र हो, तुम ही में सारे देवता सन्निहित हैं, तुम हवि प्रदान करने वाले उपासक के लिए इंद्र हो। इसीलिए ऋग्वेद के द्वितीय मंडल में अग्निदेव को इंद्रदेव, भगवान विष्णु, भगवान ब्रह्मा, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र, भग आदि सभी देवताओं से अभिन्न माना गया है।

यहाँ तक कि तैत्तिरीय ब्राह्मण (1/4/4/10) में कहा गया है—**अग्निः सर्वा देवताः**। एक देव में सभी देवताओं को देखने का यह भाव वेदों के सभी देवों की स्तुतियों में देखा जा सकता है। ऐसे ही भाव के साथ ऋग्वेद के ऋषि पुरुष, इंद्र, सूर्य, प्रजापति, अदिति, सुपर्ण, वरुण, स्कंभ, व्रात्य, काल को भी संबोधित करते हैं।

अनेक देवों में एक ही देवशक्ति की उपस्थिति सभी देवशक्तियों में अनुभव करने का यही भाव जब धीरे-धीरे प्रगाढ़ होता चला गया तो उसी ने इस शाश्वत सत्य के उद्घोष को जन्म दिया कि वस्तुतः सत् तो एक ही है। अन्य सब उसी एक शाश्वत सत्य के विभिन्न नाम एवं रूप हैं। उसी को ऋषि दीर्घतमा प्रसिद्ध उक्ति में कहते हैं—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

—ऋग्वेद—1/164/46

इसी तरह पुरुष सूक्त (ऋग्वेद-10/90/21) में पुरुष को ही भूत तथा भव्य माना गया है। इस भाव को सम्यक दृष्टि से समझ लेने पर वेदों के विषय में प्रचलित अनेकों भ्रांतियों का भी निराकरण हो जाता है। उपनिषदों में तो पहले भी इस सत्य को स्पष्ट कह दिया गया है कि—**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**। इस दृष्टि से देखने पर यह अनुभव किया जा सकता है कि वस्तुस्थिति में सभी देवता आत्मरूप ही हैं एवं वैदिक साहित्य में ऋषियों द्वारा अनेक देवताओं के रूप में उस एक आत्मदेव की ही उपासना की गई है। इसी सत्य को मनुस्मृति में कहा गया है—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।

अर्थात सभी देवता आत्मरूप हैं और एक आत्मा में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। (मनुस्मृति 12/119)

इसी सत्य को निरुक्त में कुछ ऐसे कहा गया है—

प्रकृतिः सार्वनाभ्याख्य।

इतरेतजन्मानो भवन्तितरेतर प्रकृतयः।

कर्मजन्मानः। आत्मजन्मानः।

आत्मैवैषां रथो भवति, आत्माऽश्वः, आत्माऽऽयुद्य, मात्मेषव, आत्मा सर्वं देवस्य॥

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति में एक ही सत् तत्त्व की उपस्थिति है, जिसकी उपासना विभिन्न रूपों में की गई है। इस एक सत्य का अनुसंधान ही समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का सार रूप है। इसी एक सत्य को जानना ही अंतर्यात्रा का अंतिम पड़ाव है। ❑

मनुष्य को एक पंख उग आया—विज्ञान का पंख। उसने जोर लगाया और आकाश में उड़ गया। पर वह अब मुक्त और शांत नहीं था। उसे चारों ओर से जटिलता की आँधियों ने सताना आरंभ कर दिया। मनुष्य बहुत घबराया। उसने भगवान से प्रार्थना की—"हे प्रभो! कैसे संकट में डाल दिया। इससे तो अच्छा था, हमें जन्म ही न देते।" आकाश को चीरती हुई एक आवाज आई—"वत्स! आत्मज्ञान का एक और पंख उगा। भीतर वाली चेतना का विकास कर, वही संतुलन पैदा कर सकेगी।"

स्वयं में 'स्व' की खोज का मार्ग

मनुष्य जबसे इस संसार में आया है, तभी से एक मूल प्रश्न उसके समक्ष सदैव खड़ा रहा है, वह यह कि उसका अपना वास्तविक स्वरूप क्या है? वर्तमान से लेकर भविष्य में भी जब तक इस दुनिया में मनुष्य का अस्तित्व रहेगा, तब तक प्रत्येक युग और उसके कालखंडों में यह प्रश्न सदैव मनुष्य के सामने उपस्थित रहेगा। निर्माता ने मनुष्य के अस्तित्व को कुछ मौलिक प्रश्नों की चादर में लपेटकर ही इस संसार में भेजा है।

जब तक इन प्रश्नों की चादर को न उघाड़ा जाए, स्वयं का अस्तित्व प्राप्त नहीं होता है। हरेक मनुष्य के लिए यह प्रश्न शाश्वत है कि वह स्वयं से पूछे कि उसके भीतर का वास्तविक 'स्व' क्या है? जिसे वह बार-बार 'मैं' कहता है, वह 'मैं' क्या है? इस धरा पर स्वयं के जीवन का उद्देश्य क्या है? वह यहाँ क्यों आया है? इन प्रश्नों के आवरण को तोड़े बिना किसी के लिए भी स्वयं में 'स्व' की उपलब्धि असंभव है।

ये ऐसे प्रश्न हैं, जो आदिकाल से अब तक, सदैव मनुष्य के समक्ष उपस्थित रहे हैं और आगे भी अनंत काल तक बने रहेंगे। इन्हीं के समाधान की खोज हर काल में, प्रत्येक युग-युगांतर में, सर्वत्र होती आ रही है और होती रहेगी। इन प्रश्नों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये हरेक के अस्तित्व की मौलिकता के साथ स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं।

इनकी खोज स्वयं को ही करनी होती है। कोई दूसरा चाहकर भी अन्यों के लिए इन प्रश्नों का जवाब नहीं खोज सकता है। स्वयं से ही खोजकर इन मौलिक प्रश्नों के जवाबों को प्राप्त कर लेना जीवन की सार्थकता है। मनुष्य जीवन का यही उद्देश्य है। अपने स्वरूप की, अपने 'स्व' की खोज कर लेना ही परम पुरुषार्थ है।

हमारे शास्त्रों एवं आप्तवचनों में जो सबसे मूल्यवान उपदेश है, वह यह कि स्वयं को जानो, 'आत्मानम् विद्धिः', 'अप्प दीपो भव।' स्वयं को जाने बिना सब कुछ जाना हुआ बेकार है और स्वयं को जान लेने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। ऋषियों का यही अनुभूत सत्य है। मनुष्य जीवन की संपूर्ण यात्रा का सार—स्वयं को जान लेना ही है।

अद्यतन इतिहास का सृजन करने वाली मानवता के शिखर—मूल्य-आदर्श और कुछ नहीं, इसी 'स्व' की खोज और उपलब्धि की कहानी हैं। जीवन की वास्तविक सफलता और सार्थकता के लिए प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वयं के भीतर 'स्व' की खोज एक अनिवार्यता है।

स्वयं की खोज का मार्ग सबका अपना-अपना, अलग-अलग है और हमेशा ऐसा ही रहेगा। एक का मार्ग, दूसरे का कभी नहीं हो सकता। इसलिए जिसने भी अपनी भीतर की यात्रा पूरी कर 'स्व' को खोजा, उसने सर्वथा भिन्न और नवीन व्याख्या की है। इस खोज की उपलब्धि कराने वाले कोई भी दो मार्ग कभी समान नहीं रहे हैं। ऋषि-मुनि हों या महापुरुष, सिद्ध-योगी हों या साधु-संत—सभी ने इस खोज को पूरा किया है, परंतु उनकी यात्रा एकदूसरे से सर्वथा भिन्न और अद्वितीय रही है।

इनमें से जिसने जब भी कुछ कहा है, वह अक्षरशः सत्य है, परंतु यह सत्य उनका अपना है। शंकर का ब्रह्म, बुद्ध का निर्वाण उनका अपना है, हमारा नहीं। हमारा सत्य हमारे भीतर से, हमारी यात्रा से ही प्रकट होगा।

इस सत्य के प्रकट हुए बिना जीवन के मौलिक प्रश्न सदैव अनुत्तरित ही रहेंगे। बाहरी संसार का सारा ज्ञान, संपूर्ण जानकारी मिलकर भी इन प्रश्नों का समाधान नहीं कर सकते। 'मैं', मेरा स्वरूप, मेरा उद्देश्य, मेरी वास्तविकता—इन सब प्रश्नों को प्रकाशित और परिभाषित करने का एकमात्र उपाय है—स्वयं के भीतर की यात्रा को पूरा करना।

इस यात्रा पर जो भी चले हैं, जिन्होंने भी स्वयं में 'स्व' की खोज के लिए कदम बढ़ाए हैं उनका अनुभव अत्यंत विस्मयकारी, अद्भुत और रोमांचक रहा है। शास्त्रों के हजारोंहजार पृष्ठों में 'स्व' की खोज का अनुभूत सत्य सँजोया मिलता है। जो भी इस मार्ग पर चले, उन सभी ने इस यात्रा पर प्रमुखता से प्रकाश डाला है।

परमपूज्य गुरुदेव ने भी हम सभी के लिए इस दुर्लभ यात्रा के अनुभूतिपूर्ण सत्य एवं तथ्य को अत्यंत सरल ढंग से 'गागर में सागर' बनाकर हमारे समक्ष रख दिया है। 'मैं क्या हूँ' पूज्यवर का ऐसा लघु ग्रंथ है, जिसमें स्वयं की खोज का ज्ञान-विज्ञान अत्यंत सरल, सार और सूत्र रूप में प्रस्तुत है।

स्वयं के भीतर 'स्व' की उपलब्धि के लिए चलने वालों के लिए ऐसा जीवनोपनिषद्प्रकाश अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता है। अपने वास्तविक स्वरूप को, जीवन-उद्देश्य को प्राप्त करने की यात्रा का सटीक मार्गदर्शन करने वाला अद्भुत ग्रंथ है—मैं क्या हूँ।

इसके प्रथम सोपान में इस अनुभूत सत्य का उद्घाटन है कि व्यक्ति के जीवन की संरचना में जड़ और चेतन—इन दोनों तत्त्वों का समन्वय है। सभी इन दोनों के होने की सत्यता को स्वीकारते भी हैं, लेकिन यदि किसी ने यह पूछा कि आप कौन हैं, तो भीतर से जो उत्तर बाहर आता है, वह कुछ और ही होता है।

इस उत्तर में कोई नाम विशेष, कुल, वर्ण, संप्रदाय आदि का तो परिचय मिलता है, परंतु इससे परे भी हमारे अस्तित्व में कुछ है, जो अनुत्तरित ही रहता है। वह अनुत्तरित ही हमारा मूल स्वरूप है, जिसे चैतन्य तत्त्व आत्मा के नाम से जाना जाता है। हम अपना जो परिचय देते हैं—नाम, पद, कुल, धर्म जो कुछ भी, इस परिचय का संबंध हमारे चैतन्य आत्मस्वरूप से नहीं, अपितु शरीर और उससे जुड़ी विशेषताओं से होता है।

चूँकि शरीर हमारे जीवन में जड़ों का प्रतिनिधित्व करता है और जीवन चेतना को थामे रखने का साधन मात्र है, अतः वह हमारा स्वरूप या लक्ष्य नहीं हो सकता। इस यात्रा के प्रथम सोपान में इस सत्य को स्वीकारने की और समझने की आवश्यकता है कि हमारे जीवन का अस्तित्व जड़ व चेतन, दो सर्वथा विरोधी तत्त्वों से बना है।

हमारे जीवन की वास्तविक शक्ति व सत्ता का केंद्र जड़ शरीर नहीं, अपितु चेतन आत्मा है। मनुष्य की सबसे बड़ी भ्रांति यही है कि वह समस्त जीवन का ध्येय शरीर और उसकी इंद्रियों की पूर्ति, शरीर के सुख, भोग, सुविधाओं पर ही केंद्रित रखता है। अनेक लोग भौतिक संपदाएँ और भोग सामग्रियों के एकत्रित करने में पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं।

दूसरा पक्ष चैतन्य आत्मा का एकदम उपेक्षित पड़ा रहता है। यही कारण है कि संसार में बहुत कुछ जान-समझ लेने के बावजूद भी व्यक्ति स्वयं के स्वरूप से, अपनी ही अंतरात्मा से सर्वथा अनभिज्ञ बना रहता है। इसलिए पूज्य गुरुदेव यहाँ निर्देश देते

हैं कि जीवन में मौजूद दोनों परस्पर विरोधी सत्ताओं में से जब किसी एक के चयन की बात आती है तो सभी प्राय: भौतिक पक्ष को ही चुन लेते हैं और सारा जीवन उसी दिशा में भटक जाता है; जबकि चैतन्य पक्ष का चयन करना चाहिए था। चैतन्य का चयन ही 'स्व' की उपलब्धि और यथार्थ जीवनलक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र विकल्प है। इस चयन के उपरांत ही मैं कौन हूँ ? प्रश्न का वास्तविक उत्तर प्राप्त होता है कि मैं चैतन्य तत्त्व आत्मा हूँ।

यहाँ से स्वयं की यात्रा का दूसरा सोपान प्रारंभ होता है। प्रथम सोपान में हम भौतिक और आत्मिक जीवन के भेद को समझकर आत्मिक पक्ष का चयन करते हैं। दूसरे सोपान में यह पता लगाते हैं कि इस आत्मिक पक्ष में कदम रखने के बाद किस तरह अपने मूलस्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार अपने मूल-स्वरूप को पहचानने के लिए मानसलोक अर्थात चित्त, अंत:करण, मन, बुद्धि आदि साधनों का विकास आवश्यक होता है। जीवन के इन्हीं आंतरिक आयामों में हमारी सूक्ष्मचेतना अंतर्निहित रहती है। मानसलोक में स्थित सूक्ष्मचेतना को विकसित बनाने के लिए ही ध्यान, जप, तप, योग, समाधि आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। उच्चस्तरीय आध्यात्मिक चेतनाओं की प्रथम झलक विकसित मानसलोक में ही अवतरित हो पाती है।

ध्यान आदि से कल्पनाशक्ति और मंत्र, स्वाध्याय, शास्त्र आदि से विचारशक्ति—ये दोनों मिलकर सूक्ष्मचेतना को आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के योग्य बनाते हैं। ऐसी योग्यता की प्राप्ति के लिए पूज्यवर ने जो अभ्यास एवं अनुशासन कहे हैं, वे ये हैं कि सर्वप्रथम नैसर्गिक, सुरम्य, शांत और सत्त्वयुक्त स्थान का चयन करना।

इसके पश्चात सोये, बैठे, लेटे सभी अवस्थाओं में सजगता का ध्यान। ध्यान सिद्धि की उपलब्धि। ध्यान में स्वयं के आत्म का चिंतन। स्वप्रेरण, स्वसंकेतन के अभ्यास से 'स्व' का अनुभव, स्वयं की अनुभूति। भौतिक शरीर से पृथकता की सिद्धि। पंचतत्त्वों से अलग आत्मचेतना के क्षेत्र में प्रवेश। आत्मक्षेत्र में पहुँचकर 'मैं' का अपने 'स्व' का अनुसंधान। 'स्व' की अखंड, अविनाशी, परम चैतन्य की अवस्था का बोध। यही हमारा वास्तविक स्वरूप है।

यात्रा का तृतीय सोपान आत्मचेतना में समग्र चेतना के रहस्योद्घाटन का है। स्वयं में स्वयं की यात्रा का यह अत्यंत गूढ़, विस्तृत और विस्मयकारी पड़ाव है। शरीर से मन, मन से आत्मा और आत्मा से परमात्मा की संबद्ध अंतर्कड़ियों का रहस्य यहीं उजागर होता है। पूज्य गुरुदेव ने इसे हमारे सूक्ष्मशरीर का विकास कहा है। सूक्ष्मशरीर के निचले स्तर पर जन्म-जन्मांतर की अच्छी-बुरी सब वृत्तियाँ मौजूद रहती हैं। इसे सुप्त मन अथवा प्रवृत्त मानस भी कहा जा सकता है।

सूक्ष्मशरीर के मध्यम स्तर में चिंतन, तर्क, निर्णय, तुलना, विवेचन आदि की क्षमताएँ होती हैं, जिसे प्रबुद्ध मानस कहा जाता है। सूक्ष्मशरीर के उच्चतम स्तर पर जीवन की वास्तविक प्रतिभा, आत्मप्रेरणा, ईश्वरीय संदेश प्राप्ति की योग्यता, प्रेम, दया, करुणा, न्याय, निष्ठा, धर्म, सत्य, न्याय आदि विभूतियाँ मौजूद होती हैं—इसे ही अध्यात्म मानस कहा गया है। इसी स्तर पर पहुँचकर 'स्व' के यथार्थ का साक्षात्कार होता है। स्वयं में 'स्व' की उपलब्धि होती है।

चतुर्थ सोपान में 'स्व' के विस्तार की परमात्मीय चेतना के रूप में अनुभूति प्राप्त होती है। यह सोपान स्वयं में 'स्व' की यात्रा का शिखर है। यहाँ

'स्व', 'मैं', 'अहम्' असीमित होकर अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहमस्मि जैसे महावाक्यों को चरितार्थ करता है। विशुद्ध आत्मा ही परमात्मा है—यह बोध ही इस यात्रा की पराकाष्ठा है। यहाँ तक पहुँचने वाले के लिए आत्मवत् सर्वभूतेषु, समदर्शन, स्थितप्रज्ञता आदि शास्त्रीय भावनाएँ जीवन का यथार्थ चरित्र बन जाती हैं।

ऐसे आत्मत्व-ब्रह्मत्व, स्व-तत्त्व को प्राप्त कर लेना ही मनुष्य जीवन की वास्तविक सफलता और सार्थकता है। 'स्व' के भाव में स्थिति अर्थात स्वभाव में होना ही मनुष्यता का परम मूल्य कहा गया है। 'स्व' में स्थित ही स्वस्थ है और स्वस्थ वही है, जो अपने यथार्थ चैतन्य आत्मबोध से परिपूर्ण है।

आत्मतत्त्व की उपलब्धि के पश्चात ही जीवन के सभी मौलिक प्रश्न सुलझ पाते हैं। मैं क्या हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? उद्देश्य क्या है? इन सब प्रश्नों के उत्तर केवल इसी 'स्व' की यात्रा से प्राप्त होते हैं। अपने भीतर की खोज पूरी करने पर ही व्यक्ति सत्य कह पाता है कि मैं आत्मा हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ, मेरा उद्देश्य आत्मारूपी परमात्मा को प्राप्त करना है।

इसी महान प्रयोजन की सिद्धि और इसकी समस्त संभावनाएँ लेकर ही हम सब संसार में आए हैं। क्यों न अभी से ही स्वयं की खोज में, 'स्व' के अनुसंधान में, मैं क्या हूँ के समाधान में जुट जाएँ? ❑

दीपक जल रहा था, घृत चुकने को आया। लौ क्षीण हो चली। वायु के झोंकों ने देखा कि अब दीपक पर विजय पाना आसान है, तो वे वृंद-वृंद मिलकर तेज आक्रमण करने लगे। अंधकार नीचे दबा पड़ा था। यह स्थिति देखकर वह बोला—"दीपक, अब तो तुम्हारा अंत आ गया है। अब कुछ ही देर में यहाँ मेरा साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।"

दीपक मुस्कराया और बोला—"यह देखना विधाता का काम है कि किसका साम्राज्य होगा। मेरा ध्येय है—प्रकाश बिखेरने के लिए निरंतर जलते रहना, सो अंत समय उससे विमुख क्यों होऊँ।" इसके थोड़ी देर पश्चात जब अंतिम क्षण आया तो दीपक ने अपनी समस्त शक्तियों को बटोरकर इतना प्रकाश कर दिया कि वहाँ का संपूर्ण अंधकार सिमटकर रह गया। परंतु दीपक का यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया, क्योंकि अगले ही क्षण में सूर्योदय की लालिमा वातावरण में छाने लगी थी। प्रकाश के पथ पर अकेले आगे बढ़ने वाले चाहे कितने भी हारते क्यों न लगें, दैवी संरक्षण सदा उन्हें विजय का श्रेय दिलाता एवं अनगिनत विभूतियों का अधिकारी बनाता है।

आत्मकेंद्रित जीवन ही है आध्यात्मिक जीवन

धर्म-अध्यात्म को लेकर जनमानस में कई प्रकार की भ्रांतियाँ भरी हुई होती हैं। अपना काम-धाम छोड़कर धर्म-कर्म करना भला यह कौन-सी समझदारी है ? और अभी हमारी उम्र ही क्या हुई है कि हम धर्म-कर्म करके साधु-फकीर बनते फिरें ? उम्र के अंतिम पड़ाव में कुछ धर्म-कर्म कर लेंगे; क्योंकि अभी तो जिंदगी में मजे करने का समय है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमारी बहू की एक बहुत गंदी आदत है। क्या है ? वह रोज सुबह उठकर जप-ध्यान, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन में लगी रहती है। इतना ही नहीं, अब तो वह अपनी बेटियों को भी उसी राह पर ले जा रही है। अभी तो बेटियों के खाने-खेलने के दिन हैं। उन्हें कुछ सिखाना ही है तो कोई अच्छी चीज सिखाओ, अच्छे पकवान, सुस्वाद भोजन बनाना सिखाओ, जो उसके ससुराल में काम आए।

कुछ अन्य की शिकायत होती है कि जब से अयोध्या, काशी, मथुरा, हरिद्वार से लौटे हैं, तब से इनके लक्षण कुछ ठीक नहीं लग रहे। क्यों ? क्योंकि पहले ताश खेलने, जुआ खेलने, गाँजा-भाँग-शराब पीने में वे हम लोगों का साथ दिया करते थे, लेकिन जब से हरिद्वार से लौटे हैं, तब से हम लोगों से मुँह छिपाते फिर रहे हैं।

सुना है वहाँ किसी गुरु से मंत्र लेकर आए हैं। यह मंत्र-तंत्र, धर्म-अध्यात्म सब बकवास है। अच्छा हो यदि तुम फिर से रास्ते पर लौट आओ और फिर से मौज-मस्ती करो। मौज-मस्ती नहीं तो जीवन कैसा ? जो मजा रिश्वत और घूसखोरी में है, भला वह मासिक मानदेय में कहाँ! पर यह हरिद्वार क्या हो आया, मानो वहाँ से ईमानदारी का ताबीज पहनकर आया हो। क्यों, क्योंकि अब वह न तो स्वयं रिश्वत लेता है न तो हम लोगों को लेने देता है; आदि बातें लोग अक्सर कहते और सुनते हुए पाए जाते हैं।

दरअसल धर्म-अध्यात्म के विषय में सही समझ नहीं होने के कारण ही लोग ऐसी बेतुकी बातें किया करते हैं। धर्म-अध्यात्म न तो जीवन के विरोधी हैं, न ही धर्म-अध्यात्म का मतलब जीवन से पलायन होना है। धर्म तो धारण करने की चीज है, त्याग करने की नहीं। जो धारण करने में समर्थ है, जो हमारे जीवन को धारण करने में, थामे रहने में समर्थ है; वही धर्म है।

धर्म का आशय किसी मत, पंथ, मजहब, संप्रदाय से कतई नहीं है। ये तो धर्मप्राप्ति के साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। धर्म एक मर्यादा- बंधन है, जो मनुष्य को मर्यादा में रहने को प्रेरित करता है, तैयार करता है। जो मर्यादा की सीमा को लाँघता है, वह अपने जीवन में तबाही और विनाश को ही आमंत्रित करता है।

दुर्योधन, दु:शासन, रावण, कुंभकर्ण आदि कई ऐसे पौराणिक, ऐतिहासिक चरित्र हैं, जो धन-धान्य से परिपूर्ण होते हुए भी मर्यादा में नहीं रहने के कारण विनाश को प्राप्त हुए। मर्यादा से तात्पर्य मानवीय मर्यादा से है। मनुष्य में मनुष्योचित मर्यादा न हो, मानवीय गुण न हो, मानवीय चरित्र न हो, तो फिर वह मनुष्य कैसा ? हाँ! वह आकृति से मनुष्य जैसा दिख अवश्य सकता है, पर मनुष्यता अर्थात

मानवीय गुणों के अभाव में वह वास्तव में मनुष्य जैसा व्यवहार नहीं कर सकता।

धर्म ही मनुष्य में मानवीय गुणों को भरकर उसे सही माने में मनुष्य बनाता है। जैसे तूफानों में भारी बरबादी, तबाही देखने को मिलती है, वैसे ही धर्म के बजाय जब मनुष्य अधर्म अर्थात बुराई, बेईमानी, अनीति, असत्य, अनाचार, दुराचार, हिंसा आदि के मार्ग पर चल पड़ता है, तब उसके जीवन में भी भारी तबाही के तूफान आते रहते हैं, जिसके कारण उसका सर्वनाश हो जाता है। उसका भौतिक जीवन बरबाद हो जाता है और उसका धार्मिक जीवन तो बरबाद है ही। धार्मिक जीवन से तो उसका कोई लेना-देना है ही नहीं। जो धार्मिक है, वह बुरा हो ही नहीं सकता। वह बुरे कर्म कर ही नहीं सकता और जो अधार्मिक है, वह अच्छे कर्म करने को न तो प्रेरित होता है और न ही अच्छे कर्म करता है।

जैसे समुद्र में ज्वार-भाटे उठते रहते हैं, समुद्र में तूफान आते रहते हैं, उसी प्रकार धार्मिक दृष्टि न होने के कारण मनुष्य के मन में विषय-वासना, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, दुर्भाव, द्वेष आदि विचार रूप में ज्वार-भाटे की तरह उठते रहते हैं, फिर उन दुर्गुणों के आवेश में मनुष्य अधर्म के मार्ग पर चल पड़ता है, बुराई के मार्ग पर चल पड़ता है—जिससे उसका जीवन तबाह हो जाता है।

मनुष्य जब धर्ममय जीवन जीता है तो उसका जीवन सुख-समृद्धि, शांति से परिपूर्ण होता है, वैसे ही जैसे जब तक नदी अपनी सीमा में बहती है, तब तक वह जीवन देती है, हरियाली देती है, खुशहाली देती है, पर जब वह सीमा लाँघ जाती है तो बाढ़ जैसी विभीषिका लाती है, बरबादी लाती है।

सीमा तोड़ते ही जीवनदायिनी नदी जीवन लीलने लगती है। वैसे ही अधर्म हमारे लिए भारी विभीषिका की तरह है, जो हमारे साथ-साथ औरों के लिए भी तबाही का कारण बनता है। इसलिए हमारे जीवन में धर्म होना ही चाहिए, जो हमें थामे रखे, जो हमारी रक्षा कर सके।

वैसे ही जैसे एक माँ आग की तरफ, गहरी नदी की तरफ बढ़ते हुए छोटे बच्चे को उधर जाने से रोककर उसकी प्राणरक्षा करती है, वैसे ही धर्म हमारी रक्षा करता है। जैसा कि कहा गया है 'धर्मो रक्षति रक्षित:' अर्थात जो धर्म की रक्षा करता है अर्थात जो धर्म-भावना में जीता है—धर्म उसकी रक्षा करता है। धर्म हमें बुराई की ओर जाने से रोककर हमारी रक्षा करता है।

धार्मिक होने का तात्पर्य किसी विशेष वेश-विन्यास को धारण करना नहीं होता। जो धारण करने योग्य है और जिसे धारण कर लेने पर जीवन सुंदर, सुगढ़, सुखद और समृद्ध होता है, वही धर्म है। नैतिकता, ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी, बहादुरी, श्रमशीलता आदि गुण जीवन को निस्संदेह सुगढ़, सुंदर और समृद्ध बनाते हैं तो वहीं अनैतिकता, बेईमानी, अनाचार, दुराचार, आलस्य, प्रमाद आदि अवगुण जीवन में दु:खों का पहाड़ खड़ा कर देते हैं, जिससे जीवन बोझ लगने लगता है, भार लगने लगता है।

ऐसी गलत चीजें करने पर, बुरे कर्म करने पर हमें उनका बुरा परिणाम भुगतना पड़ता है। हम आत्मग्लानि, अवसाद, तनाव, कुंठा, चिंता, उद्विग्नता के शिकार होते हैं और अपने अनमोल जीवन को स्वयं ही दु:खों से भर लेते हैं। हमारी कार्यक्षमता, उत्पादकता कम होने लगती है, जिससे हम किसी भी कार्य को सही ढंग से नहीं कर पाते। नैतिकता, ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी, बहादुरी, श्रमशीलता आदि का किसी मजहब, पंथ, संप्रदाय, मत से कोई लेना-देना नहीं। ये वे गुण हैं,

जो जीवन के हर क्षेत्र में सफल होने के लिए आवश्यक हैं।

इन गुणों के कारण मनुष्य जीवन में सारी खुशियाँ प्राप्त कर सकता है। धन-वैभव, सुख-समृद्धि सब कुछ पा सकता है। धार्मिक होने का अर्थ है आकृति के साथ-साथ प्रकृति से भी मनुष्य होना, मनुष्योचित व्यवहार करना। धार्मिक होने का अर्थ है ईमानदार होना, समझदार होना, जिम्मेदार होना, बहादुर होना, श्रमशील होना, कर्मशील होना, कर्त्तव्यनिष्ठ होना और अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग रहना।

धर्म जीवन से पलायन का नाम नहीं है, बल्कि यह तो हमें जीवन से पलायन करने से रोकता है। अपने कर्त्तव्य-पथ पर अविचल चलते रहने का नाम ही धर्म है। इसलिए धर्म का व्यापक अर्थ है कर्त्तव्य। एक माता-पिता, भाई-बहन के रूप में हमारा जो कर्त्तव्य है, उसे पूरा करना ही धर्म है।

मनुष्य होने के नाते परिवार, समाज में मनुष्योचित व्यवहार करना यही हमारा धर्म है, यही हमारा कर्त्तव्य है। एक नागरिक होने के नाते अपने राष्ट्र की आन-बान-शान के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए सदैव तत्पर रहना यही धर्म है। दूसरों की सेवा, सहायता, परोपकार करना ही धर्म है।

हम अपने मत, संप्रदाय के आधार पर जो भी धार्मिक क्रियाएँ करते हैं, उसका उद्देश्य हमारा इसी अर्थ में धार्मिक होना है। हाँ! यह समझना भी महत्त्वपूर्ण है कि सिर्फ कहने या चाहने मात्र से हम धार्मिक नहीं हो सकते, ईमानदार नहीं हो सकते, नैतिक नहीं हो सकते, परोपकारी नहीं हो सकते, जिम्मेदार नहीं हो सकते, बहादुर नहीं हो सकते।

धार्मिक होने के लिए अर्थात नैतिक होने, कर्त्तव्यनिष्ठ होने, ईमानदार होने के लिए हमारा आध्यात्मिक होना अत्यंत आवश्यक है। जैसे पूर्णिमा के चाँद से काली अँधेरी रात उजियारी हो जाती है, वैसे ही आध्यात्मिक होते ही हम धार्मिक अर्थात नैतिक, ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण स्वयं ही हो जाते हैं, उसके लिए हमें कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता।

कानूनी कार्रवाई किए जाने के डर से, रंगे हाथों पकड़े जाने के डर से, पुलिस-अदालत के डर से, सीसीटीवी कैमरे के डर से कोई कर्त्तव्यपरायण और ईमानदार बने रहने का ढोंग, ढकोसला कर सकता है, अच्छा दिखने का अभिनय कर सकता है, पर वह वास्तव में अच्छा हो नहीं सकता है, कर्त्तव्यपरायण हो नहीं सकता है। क्यों? क्योंकि वह बाहर से जैसा ईमानदार या अच्छा दिखना चाहता है, वह भीतर से वैसा है नहीं। इसलिए वह हमेशा वैसा ही करने की फिराक में रहेगा, जैसा कि वह वास्तव में भीतर से है।

अच्छा मनुष्य होने के लिए मनुष्य के भीतर नैसर्गिक बदलाव आना आवश्यक है। नैसर्गिक व समग्र बदलाव ही व्यक्ति को नैसर्गिक रूप से अच्छा व सच्चा मनुष्य बनाता है। यह काम अध्यात्म ही कर सकता है। मनुष्य का संपूर्ण आंतरिक रूपांतरण अध्यात्म से ही संभव है।

अध्यात्म—'अधि+आत्म' इन दो शब्दों से बना है, जिसका अर्थ है आत्मा की ओर। मनुष्य का जीवन जब देहकेंद्रित होता है, तब वह मात्र देह के सुख के बारे में ही सोचता है, विचारता है और तदनुरूप सुख के साधन जुटाने में लगा रहता है, फिर स्वयं के शरीर को, देह को सुखी बनाए रखने के साधन को वह अनीति, हिंसा, अनाचार आदि किसी भी तरीके से हासिल करने का प्रयास करता है। वह अपनी देह से जुड़े रिश्तों के अलावा किसी अन्य से कोई जुड़ाव महसूस नहीं करता है।

देहासक्ति के कारण वह स्वार्थ की दलदल में इतने गहरे उतर जाता है कि सुख-साधनों के अंबार होते हुए भी वह सदैव दुःखी ही रहता है। वह पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि कोई भी कर्त्तव्यपालन करने में स्वयं को पूर्णतः असमर्थ पाता है। वह न तो अच्छा पिता बन पाता है, भ्राता बन पाता है, पुत्र बन पाता है, संबंधी बन पाता है, विद्यार्थी बन पाता है और न ही अच्छा नागरिक बन पाता है। वह न तो अच्छा अध्यापक, चिकित्सक, अभियंता, उद्योगपति, कलाकार, संगीतकार, नेता, अभिनेता, किसान बन पाता है न ही अच्छा व्यक्ति बन पाता है।

क्यों ? क्योंकि वह अच्छा इनसान ही नहीं बन पाया। वह सच्चा मनुष्य ही नहीं बन पाया। वह हर जगह अपमानित होता है और दुःख भोगता है। यह सब देहकेंद्रित जीवन जीने का ही प्रतिफल है। पर जब वह देह से ऊपर उठकर आत्मा की ओर देखने लगता है, आत्मचिंतन करने लगता है तब वह देहासक्ति की दलदल से बाहर निकलकर आत्मकेंद्रित, आत्मपरायण जीवन जीने लगता है और जीवन की दलदल में भी कमल की तरह खिल उठता है।

इसलिए युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अध्यात्म को जीवन का शीर्षासन कहा है अर्थात देहकेंद्रित जीवन को उलटकर उसे आत्मकेंद्रित कर लेना ही अध्यात्म है। आत्मकेंद्रित जीवन जीने से ही मनुष्य में देवत्व अर्थात दैवी गुणों की अभिवृद्धि होती है और देखते-ही-देखते उसका जीवन देवस्वरूप हो जाता है।

वह स्वयं के बारे में ही नहीं, बल्कि सबके हित में सोचता है, विचारता है और तदनुरूप कर्म करता है, वह धरती पर देवता बनकर विचरण करता है। वह स्वयं सुखी रहता है और औरों को भी सुख प्रदान करता है।

उसके जीवन का अधूरापन मिट जाता है और वह कमलसदृश खिल उठता है, जिसकी सुगंध से उसका जीवन सुगंधित हो उठता है। वह कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी सच्चाई, ईमानदारी, जिम्मेदारी व बहादुरी से विचलित नहीं होता है और सदैव अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटा रहता है।

वह यह मानने लगता है कि सत्य परेशान हो सकता, पर परास्त नहीं। अंततः जीत सत्य की ही होती है। हमेशा सच्चाई के मार्ग पर ही चलना चाहिए। यह सब तब संभव हो पाता है, जब वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। आध्यात्मिक हो जाता है। उसका आंतरिक रूपांतरण हो जाता है।

दिव्य जीवन में श्रीअरविंद भी लिखते हैं कि शरीर, मन और प्राण का विकास आवश्यक है, परंतु यह संपूर्ण नहीं है। बुद्धि मनुष्य की विशेषता नहीं है, यह अन्य प्राणियों में भी होती है। मनुष्य में प्रज्ञा होनी चाहिए। मेरी बुद्धि को वासुदेव चलाएँ या वासना यह निर्णय स्वयं को करना पड़ता है। आत्मदृष्टि से ही चेतना की यात्रा अन्नमय कोश से आनंदमय कोश की ओर अग्रसर होती है व चेतना अपने शिखर को पहुँचती है, जिसे अतिमानस कहते हैं।

आध्यात्मिक जीवन व्यावहारिक जीवन की जड़ है। जड़ काट दी जाए तो जीवन मृतस्वरूप हो जाता है। आत्मस्वरूप, आंतरिक स्वरूप, आत्मबोध आवश्यक है। केवल देह आधारित मनुष्य संतुष्ट और समृद्ध नहीं हो सकता। मन से, बुद्धि से, आत्मा की ओर जाना होगा। व्यक्तिगत चेतना को समाहित होना होगा दिव्य चेतना से।

अपने जीवन को तीव्रतम आध्यात्मिक अभीप्सा, उच्चतर संकल्प और साधना की दिशा में मोड़कर मनुष्य देवपुरुष बन सकता है। मानव अभी भी धरती पर ईश्वर का सबसे उर्वर बीज है। किसी महापुरुष ने कहा भी है कि जैसे मोमबत्ती बिना

आग के नहीं जल सकती, वैसे ही मनुष्य भी आध्यात्मिक जीवन के बिना नहीं जी सकता।

धर्म एवं अध्यात्म—भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों के लिए परम आवश्यक हैं। धर्म-अध्यात्म ही भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को विविध रंगों से भरकर, रसों से बढ़कर तृप्त करते हैं, पूर्ण करते हैं। अस्तु आध्यात्मिक होने का अर्थ है सत्य, प्रेम, करुणा, संवेदना आदि दिव्य भावों से भरा हुआ होना।

जो इन दिव्य भावों से भरा हुआ है, वही सही माने में आध्यात्मिक है। वही सही माने में पूर्ण है पर सत्य, प्रेम, करुणा, संवेदना, आनंद आदि भावों से हम तभी भरते हैं, जब इन दिव्य भावों के शाश्वत स्रोत परब्रह्म परमात्मा से जुड़ते हैं।

जैसे हिमालय से जुड़ी हुई नदियों में हिमाच्छादित हिमालय का शीतल जल सदैव बहता रहता है—वैसे ही जब मनुष्य अपनी आत्मा से ही आत्मा में विराजमान परमात्मा का सतत ध्यान करता है, स्मरण करता है, पूजन करता है तब सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा सत्य, प्रेम, करुणा, संवेदना और आनंद के रूप में साधक की आत्मा में उमगने और उमड़ने लगते हैं, जिसकी अनुभूति साधक को पल-पल होती रहती है।

तब वह देह में होते हुए भी देहासक्ति से मुक्त होता है। वह सदा अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति पाता है। वह अपने समस्त सांसारिक कार्यों को परमात्मा का ही कार्य मानकर पूजा के भाव से करता जाता है। वह कर्म करता हुआ स्वयं को अकर्त्ता व परमात्मा को कर्त्ता मानता है। वह अपने समस्त कर्मों को, उसके फलों को परमात्मा को अर्पित करता जाता है।

फलस्वरूप वह हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-विषाद आदि द्वंद्वों से मुक्त होकर सदा के लिए आनंदित हो जाता है। वह भौतिक भोगों के बीच रहते हुए भी उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रखता और संसार में वैसे ही रहता है, जैसे जल में कमल रहता है। वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञ ईश्वर की सर्वत्र अनुभूति करता है। वह इस विराट विश्व-ब्रह्मांड को परमात्मा की ही अभिव्यक्ति मानता है।

आध्यात्मिक होने का अर्थ आत्मदृष्टि का खुल जाना है। आत्मदृष्टि पाते ही उसे यह बोध होता है कि सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। सर्वज्ञ परमात्मा से हम कुछ भी छिपा नहीं सकते। वे हमारे अच्छे-बुरे सभी कर्मों को देख रहे हैं। वह यह मानने लगता है कि आज हम सुख-दुःख जिस किसी भी स्थिति में हैं, उसके लिए कोई और नहीं, बल्कि सिर्फ और सिर्फ हम ही जिम्मेदार हैं। हम जैसा कर्म करेंगे, वैसा फल हमें अवश्य प्राप्त होगा। दूसरों की सेवा-सहायता को वह सदैव आकुल-व्याकुल रहता है।

वास्तव में यही आध्यात्मिक होने के लक्षण हैं। यही अध्यात्म है, यही आध्यात्मिक ज्ञान है। गीताकार ने गीता 13/11 में कहा है—

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

अर्थात अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना—यह सब ज्ञान है और जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान है—ऐसा कहा गया है। जिस ज्ञान के द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाए, उस ज्ञान का नाम 'अध्यात्म ज्ञान' है।

यह वही अध्यात्म ज्ञान है, जिसे भगवान श्रीकृष्ण से पाकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन कर्त्तव्य कर्म करने को प्रेरित हुए। अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति से पूर्व अर्जुन गीता के प्रथम अध्याय में अवसाद में

हैं, विषाद में हैं और अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ने की तैयारी में हैं।

इसी कारण तो वे कह रहे हैं कि हे कृष्ण! युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी अपने स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कंप एवं रोमांच हो रहा है। हमारे हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और त्वचा बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़ा रहने को समर्थ नहीं हूँ।

अर्जुन के भ्रम को दूर करने के लिए भगवान कृष्ण उन्हें ज्ञान, कर्म, भक्ति, वैराग्य आदि के रूप में अध्यात्म ज्ञान का उपदेश करते हैं और उन्हें अपने विराटस्वरूप का दर्शन कराते हैं। तब अर्जुन के सारे भ्रम दूर होते हैं। अर्जुन गीता के प्रथम अध्याय में विषाद में हैं, इसलिए गीता के प्रथम अध्याय को अर्जुन विषादयोग नाम से जाना जाता है। वहीं गीता का अंतिम 18वाँ अध्याय मोक्ष-संन्यास योग नाम से पुकारा गया है; क्योंकि तब अर्जुन विषाद से बाहर निकल मोक्ष व आनंद की स्थिति को प्राप्त हो चुके हैं।

जो अर्जुन गीता के प्रथम अध्याय में विषाद में हैं, वह बाद के अध्यायों में अध्यात्म ज्ञान पाकर कर्त्तव्य कर्म करने को तत्पर हुए और विषाद से निकलकर मोक्ष की ओर अग्रसर हुए, मुक्ति की ओर, आनंद की ओर अग्रसर हुए। अत: अध्यात्म विषाद से निकलकर मोक्ष अर्थात आनंद की ओर अग्रसर होने की यात्रा है। अध्यात्म कर्त्तव्य से पलायन करना नहीं, बल्कि कर्त्तव्य कर्मों में प्रवृत्त होना है और यही अध्यात्म का वास्तविक अभिप्राय है।

अध्यात्म नाम है आत्मदृष्टि के विकास का और जब अध्यात्म से साधक की आत्मदृष्टि खुलती है तो उस दृष्टि से देखने पर संसार का नजारा बिलकुल बदला हुआ-सा होता है। संसार के नजारे तो वही होते हैं, पर उसे देखने का नजरिया बदला हुआ होता है, जिससे संसार में हमें सर्वत्र ही सौंदर्य-ही-सौंदर्य, शुभ-ही-शुभ दिखता है; क्योंकि आत्मदृष्टि के कारण मन से सारे विकार मिट जाते हैं, सारी नकारात्मक चीजें, निराशाजनक विचार मिट जाते हैं। मन स्वच्छ-पारदर्शी हो जाता है, जिससे साधक में साहस, आशा, उत्साह का संचार होने लगता है।

अध्यात्म एक दृष्टि है, नजरिया है, प्रवृत्ति है, प्रकृति है, जिसे पाकर मनुष्य पूर्ण मनुष्य, सच्चा मनुष्य, बड़ा मनुष्य बन पाता है और जीवन को आनंद से आप्लावित कर लेता है। जरूरत है हमें भी उसी अंतर्दृष्टि, आत्मदृष्टि विकसित करने की, जिससे हम भी आनंद से आप्लावित हो सकें। धर्म-अध्यात्म की बातें बकवास नहीं, बल्कि बहुमूल्य हैं।

अध्यात्म विकल्प नहीं, बल्कि जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। यह जीवन के अंतिम पड़ाव में अभ्यास से लाने या पाने की वस्तु नहीं है, बल्कि यह तो जीवन की जड़ है, जिससे जीवनरूपी पौधे को जीवन रस मिलता है, फलस्वरूप जीवन तभी पूर्णरूपेण विकसित होता है, पुष्पित-पल्लवित होता है और सुगंधित पुष्पों और मधुर फलों से भर आता है। अस्तु जीवन के आरंभ से ही हमें अध्यात्म से जुड़ना चाहिए। हमें आध्यात्मिक होने का अभ्यास आरंभ कर देना चाहिए।

आध्यात्मिकता का भौतिकता से कोई विरोध नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि होने से हम भौतिकता का और अधिक आनंद उठा पाते हैं, सुख प्राप्त कर पाते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि न होने से अकेली भौतिकता दु:खदायी होती है; क्योंकि

आध्यात्मिक दृष्टि न होने से भौतिकता मनुष्य में मद, अहंकार और लोभ पैदा करती है, जिसके कारण व्यक्ति विनाश को प्राप्त होता है।

रावण, कंस, दुर्योधन के पास अथाह भौतिक संपदा थी, पर आध्यात्मिक दृष्टि न होने के कारण उनमें भौतिकता का, भौतिक संपदा का मद, अहंकार, लोभ आ गया, जिसके कारण वे अमानवीय आचरण करने लगे और अंततः विनाश को प्राप्त हुए। राजा जनक मिथिला के राजा थे, उनके पास अथाह भौतिक संपदा थी, पर उनमें जरा भी मद, अहंकार, लोभ नहीं था।

क्यों ? क्योंकि उनके पास आध्यात्मिक ज्ञान था, आध्यात्मिक दृष्टि थी, इसलिए अथाह भौतिक संपदा के स्वामी होते हुए भी वे उनके प्रति आसक्त नहीं अनासक्त रहे, राग से नहीं, बल्कि वैराग्य से भरे रहे। फलस्वरूप उनकी भौतिक संपदा उनके साथ-साथ दूसरों के लिए भी कल्याणकारी रही और वे भगवत्प्राप्ति के अधिकारी हुए।

भौतिक संपदा के स्वामी होते हुए भी राजा दशरथ आत्मज्ञानी, आत्मदृष्टि, आध्यात्मिक दृष्टि से संपन्न थे, इसलिए उनके घर भगवान ने अवतार लिया। अस्तु भगवत्प्राप्ति के लिए ही नहीं, बल्कि भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए भी आध्यात्मिकता अनिवार्य है।

आध्यात्मिक दृष्टि से ही हम अपने सभी कर्त्तव्य कर्मों को ईमानदारीपूर्वक करते हैं और सुख एवं सम्मान प्राप्त करते हैं। रावण और विभीषण दोनों लंका जैसी संपन्न नगरी में रहते थे, पर भौतिकवादी दृष्टि के कारण रावण विनाश को प्राप्त हुआ तो वहीं आध्यात्मिक दृष्टि, आत्मदृष्टि होने के कारण विभीषण को भगवत्प्राप्ति हुई।

अनुकूलताएँ व प्रतिकूलताएँ तो जीवन में आती ही हैं। सुख-दुःख तो जीवन में आते ही हैं, पर अज्ञानीजन, भौतिकवादी दृष्टिसंपन्न लोग विषम परिस्थितियों में घबराकर अपना संतुलन खो बैठते हैं—वे स्वयं मरने या दूसरों को मारने पर, अनैतिक कार्य करने पर उतारू हो जाते हैं, पर आध्यात्मिक दृष्टिसंपन्न व्यक्ति विषम परिस्थितियों में भी धैर्य व संतुलन बनाए रखते हैं और सच्चाई, ईमानदारी का परित्याग नहीं करते एवं इसीलिए अंततः जीवन के हर क्षेत्र में सफलता और सुख प्राप्त करते हैं। अस्तु धर्म-अध्यात्म हमारे जीवन के लिए वैकल्पिक नहीं, बल्कि अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं एवं इनका अनुपालन सभी को करना चाहिए। ❑

एक राजा अत्यंत चिंतित एवं उदास रहा करता था। चिकित्सकों ने उसे प्रसन्न करने के बहुत प्रयत्न किए, किंतु कोई परिणाम न निकला। तब किसी ने सुझाव दिया कि यदि राजा को किसी सुखी व प्रसन्न व्यक्ति का कुरता पहना दिया जाए तो राजा सुखी हो जाएगा। राजकर्मचारी तुरंत ही ऐसे व्यक्ति की खोज करने में लग गए।

संयोगवश एक प्रसन्न व्यक्ति उन्हें मिल भी गया। कर्मचारी उसे राजा के पास लेकर पहुँचे। उसे देखते ही राजा खुशी से चीखा और बोला—"लाओ! जल्दी से अपना कुरता मुझे लाकर दे दो तो मैं उसे पहन लूँ।" वह व्यक्ति बोला—"राजन्! मैं तो साधारण-सा किसान हूँ। कुरता तो क्या मैंने जीवन में एक अँगोछा भी नहीं देखा है, पर जो मुझे मिला है, उससे मैं संतुष्ट हूँ और उसी में प्रसन्न हूँ।" राजा को समझ में आ गया कि संतोष ही सुख का कारण है।

आचार्य शंकर की बदरिकाश्रम यात्रा

आचार्य शंकर की तीर्थयात्रा धर्मस्थापना का एक अभिन्न अंग थी। बारह वर्ष के संन्यासी शंकर प्रयागराज, बनारस, काशी आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए अब अपने शिष्यों के साथ बदरिकाश्रम की ओर चले जा रहे थे। मार्ग में जो भी तीर्थस्थान मिलता, उसका महत्त्व शिष्यों को, श्रद्धालु भक्तों को समझाते, तीर्थों का दर्शन करते, देवविग्रह की पूजा-अर्चना करते, शिष्यों से कराते। इस प्रकार गंगा के किनारे-किनारे तीर्थों का दर्शन करते हुए वे हरिद्वार पहुँच गए।

उन्होंने अपने शिष्यों को समझाया—"प्राचीनकाल से ही हरिद्वार—मायापुरी ऋषियों की तपस्या-भूमि रही है। हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है। यहाँ पर सभी तीर्थों का वास है। यहाँ पर भगवान विष्णु व महेश, दोनों का वास है। यहाँ पर बड़े-बड़े तपस्वी ऋषियों ने तपस्या करके लोक-कल्याण के लिए भावना की है। इसलिए यह पूरा क्षेत्र ही आध्यात्मिक ऊर्जा का घनीभूत क्षेत्र है।"

वे आगे बोले—"इसमें प्रवेश करने मात्र से मन में शांति व पवित्रता का एहसास होता है। यहाँ पर गंगास्नान का भी विशेष महत्त्व है, पर इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि गंगा में मात्र शरीर स्नान से लाभ नहीं, बल्कि गंगा में चित्तस्नान, आत्मा का स्नान आवश्यक है। चित्तस्नान करने से ही चित्तशुद्धि होती है, आत्मशुद्धि होती है।

"देहासक्त होकर गंगास्नान करने से सिर्फ देहस्नान ही हो सकता है। चित्तशुद्धि के लिए आत्मदृष्टि आवश्यक है। देहस्नान करने से देह अवश्य शुद्ध हो जाएगी, पर चित्त को शुद्ध करने के लिए जप, तप आदि साधनाएँ आवश्यक हैं।

"उसी प्रकार साधक जिन देवों का दर्शन देवालयों में करता है, उसे अपने देहरूपी देवालय में स्थित हृदयगुफा में उन देवों का, भगवान का ध्यान व दर्शन करते रहना चाहिए। देवालयों में देवदर्शन करने का अभिप्राय भी यही है।" अपने गुरु आचार्य शंकर की प्रेरणा-उपदेश से भरी वाणी सुनकर सभी शिष्य हर्षित हो रहे थे।

प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य को निहारते हुए वे ऋषिकेश में स्थित तीर्थस्थानों का दर्शन करते हुए गंगा को पार करके आगे बढ़े। वनों से ढके ऊँचे पर्वतों को पार करते हुए वे व्यास आश्रम पहुँचे। तत्पश्चात अलकनंदा और भागीरथी के मिलन-क्षेत्र देवप्रयाग का दर्शन कर वे अभिभूत हो गए। वे ध्यानमग्न होकर वहाँ घंटों बैठे रहे।

ऋषियों की तपस्या-भूमि हिमालय की तलहटी में बसे पवित्र तीर्थस्थान शंकर के मन में अलौकिक भावों की सृष्टि कर रहे थे। वे शिष्यों से वार्त्तालाप करने के बाद अधिक समय ध्यान में ही व्यतीत करते थे। रात्रि में किसी देवालय में विश्राम करते, फिर ब्राह्ममुहूर्त में भगवद्ध्यान करके आगे के लिए चल पड़ते। बिल्वकेश्वर को पार करके वे श्री-क्षेत्र (श्रीनगर) पहुँचे। प्राचीन समय में यह उत्तराखंड के राजाओं की राजधानी भी थी।

आचार्य शंकर ने श्री-क्षेत्र में स्थित शिव और विष्णु मंदिर जाकर दर्शन-पूजन किए एवं फिर आगे के लिए चल पड़े। रास्ते में पंडितों, ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करते हुए, पाखंडखंडन करते हुए उन्हें

धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाते हुए वे आगे बढ़ते जाते। देवस्थलों में दी जाने वाली बलि को अधार्मिक कृत्य बताते हुए उन्होंने कहा—"भला जो आद्यशक्ति समस्त प्राणियों की जननी है, वह अपनी संतान का रुधिर-पान करके या मस्तक की भेंट लेकर प्रसन्न होगी। कदापि नहीं! कभी नहीं।"

आचार्य शंकर की यह तेजस्वी वाणी बलिप्रथा में विश्वास करने वाले ब्राह्मणों, तांत्रिकों के हृदय को बेधती चली गई। पंडित, ब्राह्मण, तांत्रिक, दर्शक आश्चर्य से उस छोटे से तेजस्वी, ज्ञानी संन्यासी की ओर देखते रहे। बलिप्रथा के विरुद्ध शंकर ने कई शास्त्रीय प्रमाण दिए तब तांत्रिकों ने फिर कभी देवी के सामने बलि नहीं देने की शपथ ली। वे तब रुद्रप्रयाग होते हुए प्रयाग पहुँचे। उन्होंने वहाँ बैठकर श्रद्धालु भक्तों को वैदिक धर्म का पालन करने का उपदेश दिया।

यहाँ से बदरी-क्षेत्र आरंभ हो जाता है। अपने मन को निर्गुण, निर्विकल्प भूमि से उतारकर आचार्य शंकर सगुण ब्रह्मभाव का आश्रय लेते हुए सर्वत्र सर्वव्यापक परब्रह्म की उपस्थिति का आभास करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे। अपने श्रद्धालु भक्तों व शिष्यों को सगुण-निर्गुण साधना का महत्त्व समझाते हुए हिमालय की अद्‌भुत छटा को निहारते हुए वे आगे बढ़े चले जा रहे थे।

वे शिष्यों से कह रहे थे—"हिमालय महामानवों की तपस्या की भूमि रही है, इसलिए हिमालय को देवात्मा कहा गया है। जिस स्थान पर कोई महामानव साधना करके परब्रह्म की अनुभूति लाभ करता है, उस स्थान में उसकी अनुभूति की भावधारा दीर्घकाल तक रहती है। अस्तु ऐसे स्थान की यात्रा करने और वहाँ साधना करने वाले साधक वहाँ संव्याप्त आध्यात्मिक ऊर्जा व भावधारा से अपने आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा व ऊर्जा पाते हैं।"

मार्ग में अनेक पर्वतमालाओं को उन्हें पार करना पड़ा। घने बीहड़ वनों में विश्राम के लिए ठहरना पड़ा, पर वे साहस व धैर्य से आगे ही बढ़ते चले जा रहे थे।

मार्ग में विश्राम के लिए शंकराचार्य ज्योतिर्धाम ठहरे। वहाँ उन्होंने जनसमुदाय को धर्म के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। ज्योतिर्धाम के राजा के आग्रह करने पर आचार्य शंकर ने वहाँ कई दिनों तक निवास किया।

श्रद्धालु जनता उनके ब्रह्मतेज से चमकते मुख को अपलक देखती रह जाती। फिर विष्णु प्रयाग, धौलिगंगा, ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड, शिवकुंड और गणेश तीर्थादि का दर्शन करते हुए वे पांडुकेश्वर पहुँच गए। पांडुकेश्वर के बारे में शिष्यों को उन्होंने बताया—"राजा पांडु ने यहाँ घोर तपस्या की थी और आराधना करके, आशुतोष भगवान शिव के दर्शन यहीं किए थे। इसी कारण इस स्थान के महादेव का नाम पांडुकेश्वर है।"

आचार्य शंकर अद्वैत-ब्रह्मानुभूति के उच्च स्तर तक पहुँच चुके थे। अगाध ज्ञान, ब्रह्मज्ञान के भी वे अधिकारी बन चुके थे। अभी उनकी उम्र सिर्फ बारह वर्ष की थी; पर देवकार्य, भगवत्कार्य साधन के लिए लगभग तीन महीने तक वे यात्रा करते रहे।

पथरीले पथ, नदी, हिंसक जीव-जंतुओं से भरे वन व दुर्गम गिरि-कंदराओं को पार करते हुए वे आगे-ही-आगे बढ़ते रहे। चलते-चलते वे बदरी-क्षेत्र के समीप पहुँच गए। उनके शिष्य हर्ष से भर गए और कहने लगे—"देखिए गुरुदेव! उज्ज्वल सफेद हिम से ढके हुए वह नर और नारायण पर्वत दिखाई दे रहे हैं।" "इस पुण्यभूमि का अनूठा सौंदर्य है वत्स!"—आचार्य शंकर ने मुस्कराते हुए कहा।

वे आगे बोले—"इसी स्थान पर नर और नारायण ऋषियों ने तपस्या की थी। उधर देखो

बदरीनारायण मंदिर के समीप ही तप्तकुंड है, प्रकृति की यह लीला देखो, उधर बरफ से ढकी हुई ऊँची चोटियों वाले नर-नारायण पर्वत, शीश उठाए बीते हुए युग की गाथा सुनाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। इधर हिमालय की गोद से निकलकर बरफ की शिलाओं को सूर्य की किरणों से जल में परिवर्तन कराकर अपने में समेटती हुई यह अलकनंदा नाम की नदी, आगे की ओर बढ़ी जा रही है। वह यह संदेश दे रही है कि जीवन में कुछ अच्छे कार्य करने हैं तो आगे बढ़ो, रुको नहीं। चलो पहले तप्तकुंड में स्नान करके मार्ग की थकान उतार लें।''

यह कहते हुए वे शिष्यों के साथ स्नान को चल पड़े। इस पुण्यभूमि के अनूठे सौंदर्य ने सबके मन को आनंद से भर दिया। आचार्य शंकर के शिष्यों में से एक सनंदन ने स्नान करके शंकर के वस्त्र को बैठकर धोते हुए कहा—''इस पवित्र भूमि पर मन अपने आप ही भगवद्ध्यान में डूबने लगा है गुरुदेव।''

आचार्य शंकर बोले—''हाँ सनंदन! यह इस पुण्यभूमि का ही प्रभाव है। तीर्थ में आने का यही लाभ है, यही मुख्य प्रयोजन भी है। देखो, अभी सूर्य की किरणें, ऊँचे बरफ से ढके पर्वत-शिखरों पर पड़कर इंद्रधनुषी छटा बिखेर रही थीं और अब आकाश में काले बादल छाकर कलिमा बिखेर रहे हैं। इसी प्रकार हर्ष-विषाद जीवन में आते हैं, पर सच्चा साधक वही है, जिसे दु:ख, विषाद विचलित न कर सकें और हर्ष में, सुख में, वह अपना आपा खोए नहीं, मानवता के हित भूले नहीं।''

फिर शंकर ने कहा—''चलो, अब हम सब स्नान कर चुके, श्रीबदरीविशाल के मंदिर में नारायण-विग्रह के दर्शन करने चलें।'' वे सभी मंदिर की ओर चल पड़े। पर यह क्या ? वहाँ मंदिर में नारायण-प्रतिमा तो थी ही नहीं। उस स्थान पर शालग्राम-शिला को ही भगवान नारायण मानकर पूजा की जा रही थी। शंकर ने भी पूजा की, पर उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। वहाँ उपस्थित श्रद्धालु भक्तों से उन्होंने पूछा—''मंदिर नारायण-प्रतिमा से शून्य क्यों है ? मंदिर में नारायण-विग्रह नहीं है तो कहाँ है ? हमने तो सुना था इस पुण्य-क्षेत्र में भगवान चारों युगों में निवास करते हैं।''

''महात्मन्! चीनी दस्युओं के अत्याचार के कारण हमारे पूर्वजों ने समीप के किसी कुंड में श्रीनारायण-विग्रह को छिपा दिया था। उसके पश्चात तो अनेक बार विग्रह की खोज की गई, पर नारायण-विग्रह मिला नहीं। तभी से भक्तों ने शालग्राम-शिला को ही भगवान मानकर पूजादि कार्य करने आरंभ कर दिए।''

श्रद्धालुओं की बातें सुनकर शंकर वहीं बैठकर ध्यानमग्न हो गए, फिर थोड़ी देर बाद उन्होंने आँखें खोलीं और श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए कहा—''यदि किसी प्रकार नारायण-विग्रह को खोज लिया जाए, तब आप सब क्या विग्रह को पुन: प्रतिष्ठित कर यथाविधि पूजादि कार्य करने को तैयार हैं।'' तब सबने एक स्वर में ऐसा करने का वचन दिया। साथ ही बोले—''यदि नारायण-विग्रह मिल गया तो हम सब अपने को धन्य समझेंगे महात्मन्!''

शंकराचार्य थोड़ी देर ध्यानमग्न रहे, फिर उठकर नारदकुंड की ओर चल पड़े। सभी शिष्य, पुजारी, श्रद्धालु, दर्शक, यात्री उनके पीछे-पीछे चल पड़े। नारदकुंड के समीप आकर शंकर पुन: ध्यानमग्न हुए और फिर कुंड के जल में उतर गए। कुंड के साथ अलकनंदा के तीव्र वेग का संयोग है, अस्तु उसमें उतरते देखकर श्रद्धालु चिल्लाए—''महात्मन्! कुंड में मत उतरिए, अलकनंदा का कुंड से संबंध है। आपको यह कुंड अथाह जल में खींच ले जाएगा। आपके प्राण संकट में पड़ जाएँगे। आप कुंड से बाहर आ जाइए।''

सभी श्रद्धालु उनसे कुंड से बाहर निकलने के लिए प्रार्थना करने लगे, पर शंकर तो अलकनंदा की उस विशाल वेग से बहती हुई जल-राशि में उतर चुके थे, उसमें डुबकी लगाकर विग्रह को खोजने में लग चुके थे।

थोड़ी देर बाद जब वे जल के ऊपर आए तो उनके हाथ में नारायण की एक चतुर्भुजी मूर्ति भी थी, पर यह खंडित थी। खंडित मूर्ति की पूजा नहीं की जा सकेगी, यह जानकर उन्होंने उसे जल में विसर्जित कर दिया और पुन: अलकनंदा में कूद पड़े। इस बार भी वह एक मूर्ति लेकर निकले, पर उस मूर्ति की भी उँगलियाँ खंडित थीं। उन्होंने तीसरी डुबकी लगाई, फिर एक मूर्ति लेकर निकले, पर उस विग्रह की भी दक्षिण हाथ की उँगलियाँ खंडित थीं।

शंकर सोचने लगे, यह कैसी दैवी माया है। तभी आकाशवाणी हुई—''शंकर! तुम चिंता न करो, इसी नारायण-विग्रह की प्रतिष्ठा करो, कलियुग में इस विग्रह की ही पूजा होगी।'' आकाशवाणी सुनकर शंकर हर्षविभोर हो गए, भक्ति-भाव से अभिभूत शंकर, भुवनमंगल नारायण-विग्रह को कंधे पर रखकर बाहर निकल आए। श्रद्धालु भक्तों, शिष्यों के जयघोष से पूरा वातावरण गूँज उठा। चतुर्भुज नारायण की मूर्ति कंधे पर रखे हुए शंकराचार्य मंदिर में प्रविष्ट हुए। श्रद्धालु भक्तों, पुजारियों ने शास्त्रविधि अनुसार नारायण-विग्रह का अभिषेक करके धूप, दीप आदि सुगंधित पदार्थ जलाकर पूजा-आरती की और सबको प्रसाद दिया।

वहाँ उपस्थित श्रद्धालु इस अलौकिक घटना को देखकर आश्चर्यचकित भी हुए और आनंद से अभिभूत भी। शंकराचार्य ने मंदिर की पूजा के लिए नंबूदरी ब्राह्मण नियुक्त किए और शिष्यों सहित व्यास आश्रम की ओर चल पड़े।

इस प्रकार तीर्थयात्रा करते हुए वे सनातन वैदिक धर्म की ध्वजा फहराते रहे, लहराते रहे और ब्रह्मसूत्र आदि ग्रंथों का भाष्य करके इस भारतभूमि, देवभूमि पर अपने अवतरण के मूल प्रयोजन को पूर्ण कर अंतत: वे ब्रह्म में लीन हो गए। ❑

ईरान का बादशाह नौशेरवाँ एक दिन शिकार खेलते दूर निकल गया। दोपहर का समय हो जाने से गाँव में डेरा डालकर भोजन की व्यवस्था की गई। भोजन बनाने वालों को जब ज्ञात हुआ कि साथ लाए सामान में नमक नहीं है तो वे निकट के घर से थोड़ा-सा नमक ले आए। बादशाह ने उनसे पूछा—''नमक के दाम दे आए।'' सेवक बोला—''बादशाह! थोड़े-से नमक का क्या दाम देना ?'' नौशेरवाँ तुरंत बोले—''जाओ और तुरंत नमक के दाम देकर आओ। बदनीयती की शुरुआत ऐसी ही छोटी भूलों से होती है। यदि आज मैं छोटी-सी चीज बिना कीमत दिए लूँगा तो कल मेरे कर्मचारी मूल्यवान वस्तुएँ भी मुफ्त में लेना शुरू कर देंगे और राज्य में अराजकता फैल जाएगी।'' अपने आचरण से सीख देने वाले ही दूसरों के लिए उदाहरण बनते हैं।

पर्व विशेष - श्रीराम नवमी

प्रेरणाओं को ग्रहण करने का पावन पर्व

राम नवमी का पावन एवं मंगलकारी पर्व इस माह आ रहा है। भगवान राम का यह जन्मदिवस संपूर्ण वसुधा के लिए एक मंगलमय अवसर के रूप में है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों को अपने जीवन में मूर्तिमान करने वाले, भारतीय धर्म के आकाश में सूर्य की तरह चमकने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के जीवन से प्रेरणाओं को ग्रहण करने का पावन पर्व इसे कह सकते हैं।

ध्यान से देखें तो वर्तमान समय में भी लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ हैं, जिस तरह की परिस्थितियों में भगवान राम के अवतरण के कथानक को लिखा गया था। जिन परिस्थितियों में भगवान राम ने अपने पुण्यचरित्र को जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया था, वर्तमान समय भी कुछ-कुछ वैसा ही है।

रावण सही पूछा जाए तो एक व्यक्ति से ज्यादा ऐसी विकृत मानसिकता का नाम है—जो छोटे उद्देश्यों, छोटे कार्यों, स्वार्थ, अहंकार, लोभ, लालच, हिंसा से परिभाषित होती है। गंभीरता से सोचें तो क्या ऐसा नहीं लगता कि आज की परिस्थितियाँ और आज का वातावरण—वैसी ही मानसिकता का प्रतीक बन गए हैं।

आज के समय को देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वार्थ और संकीर्णता फैशन में आ गए हैं और अपने हितों को पूरा करने की अंधी दौड़ में लोग सज्जनता और मानवता का जनाजा निकालने में संकोच भी नहीं करते हैं। ये ठीक है कि आज के समय में धन बढ़ा है, साधन बढ़े हैं, सुविधाएँ बढ़ी हैं, परंतु क्या यह सत्य नहीं है कि आज उतनी ही तेजी के साथ चरित्र का पतन हुआ है, भावनाएँ संकुचित हुई हैं और परस्पर के स्नेह-विश्वास का स्थान शक, संदेह और कठोरता ने ले लिया है।

कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि आज ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता और विश्वसनीयता इतनी तेजी से गिर रहे हैं कि व्यक्ति के मन में न समाज का संकोच है, न प्रशासन का भय है और न ही उसके मन में ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था पर जरा भी भरोसा रह गया है। परिणाम यह है कि वो मानवीय जीवन, जिसको हम परमेश्वरप्रदत्त सौभाग्यों में सबसे ऊपर गिनते थे, उसका मूल्य शून्य हो गया है और यह देवदुर्लभ जीवन मात्र उलझनों, परेशानियों, झंझटों और पापों को इकट्ठा करने में ही चला जाता है।

हो सकता है कि किसी को ये बातें आलंकारिक लगें तो ऐसे में हमें स्वयं से पूछ करके देखने की आवश्यकता है कि क्या हमें हमारे मन में सुकून, दिल में शांति और चिंतन में स्थिरता अनुभव होती है। ऐसा अनुभव नहीं हो पाता; क्योंकि आज का वातावरण अंधकार का, तमस् का वातावरण है। ये परिस्थितियाँ लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ हैं, जैसी कभी भगवान राम के अवतरण के समय में थीं। आज भी एक वैसे ही प्रयास की जरूरत है, जैसा प्रयास भगवान राम के लीला प्रसंग के समय में किया गया था।

अवतारी सत्ताओं के आगमन का उद्देश्य भी कुछ वैसा ही होता है। यही अंतर महापुरुषों में एवं अवतारों में होता है। महापुरुषों के जीवन निश्चित रूप से प्रेरक होते हैं, अनुकरणीय होते हैं, प्रख्यात एवं लोकप्रिय भी होते हैं, परंतु अवतारों के जीवन में इन सारी विशेषताओं के अतिरिक्त भी एक

विशेषता होती है कि वो कालचक्र की दिशा को परिवर्तित करने के लिए आते हैं। सारांश में कहें तो इसे ऐसे कह सकते हैं कि महापुरुषों और अवतारों— दोनों के जीवन का उद्देश्य लोक-शिक्षण होता है, परंतु अवतार इसके अतिरिक्त एक और कार्य संपन्न करते हैं—वो है वातावरण के प्रवाह को परिवर्तित करना।

अवतारों के जीवन प्रसंग का उद्देश्य मात्र अच्छी सोच एवं शुभ शिक्षाओं को प्रसारित करना ही नहीं होता, बल्कि उनका कार्य वातावरण को नूतन एवं सकारात्मक दिशा प्रदान करना भी होता है। परिस्थितियाँ अंधकार की होती हैं तो न केवल वे एक प्रकाशपुंज की तरह चमकते हैं, बल्कि वे प्रकाश को स्थापित भी करते हैं।

इसे कुछ ऐसे समझ सकते हैं कि अंधकार में प्रकाश लाने का काम एक मोमबत्ती भी करती है, एक टॉर्च भी करती है और एक मशाल भी करती है, पर इन सबसे अँधेरा थोड़ी देर के लिए ही दूर होता है। इसके विपरीत जब भगवान सूर्य का उदय होता है तो न केवल वे प्रकाश लाते हैं, बल्कि वे सवेरे को स्थापित भी करते हैं।

भगवान राम का जीवन इसीलिए युगांतकारी हो जाता है; क्योंकि उनके आगमन के साथ न केवल असुरता का अंत होता है, लंका का अंत होता है, बल्कि रामराज्य का प्रारंभ भी होता है। अवतारों के अवतरण का प्रयोजन ही यह है कि वे अपने जीवन के माध्यम से ऐसे उदाहरण जनसामान्य के सम्मुख रखते हैं कि जिनसे प्रेरणा प्राप्त करके व्यक्ति नर-से-नारायण, मानव-से-महामानव और क्षुद्र से महान बन सकता है। साथ ही वे ऐसे अभियानों को भी जन्म देते हैं, जिनका अंग बनकर मनुष्य में दिव्य भावनाएँ, उत्कृष्ट विचारणाएँ एवं आदर्शवादी क्रिया चेष्टाएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

इसीलिए तो रामचरितमानस में भगवान राम का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता।
अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥

कुछ ऐसा ही महर्षि वाल्मीकि भी उनके द्वारा रचित रामायण में लिखते हैं। वे कहते हैं कि **'त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम संभवः।'** इसीलिए रामचरितमानस में काकभुशुंडि जी के द्वारा यह वचन निकला है कि—

उदर माझ सुनु अंडज राया।
देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका।
रचना अधिक एक ते एका॥

शुद्धौमुक्तः सदैवात्मा न वै बध्यते कर्हिचित।
बन्धमोक्षौ मनस्सस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यति॥

—श्रीमद्भागवत

अर्थात आत्मा तो शुद्ध और मुक्त है। वह कभी भी बंधन को प्राप्त नहीं होती। बंधन और मोक्ष तो मन के गुण हैं।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा।
अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला।
अगनित भूधर भूमि बिसाला॥

इस दृष्टि से देखें तो भगवान राम का चरित्र हमें हर प्राणी में उन्हीं परमात्मा के दर्शन की प्रेरणा देता है। कण-कण में भगवान को देखते हुए, हर अंश में परब्रह्म को देखते हुए जो जीवन जीता है, उसके अंदर सद्भावनाएँ, सद्विचारणाएँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ स्वतः ही विकसित होती चली जाती हैं। **'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'** के भाव से इस राम नवमी पर इसी प्रेरणा को आत्मसात् करने का प्रयास हमें करना चाहिए। ❒

सत्संग का होता है अद्भुत प्रभाव

एकनाथ एक उच्च कोटि के संत थे। उनकी निर्मलता, सहृदयता व समदर्शिता सदा उनके आचरण से प्रस्फुटित हुआ करती थी। एक दिन रात्रि में उनके यहाँ हरिकीर्तन हो रहा था। उसमें कई श्रद्धालु, भक्त, शिष्य शामिल थे। उसी समय तीन चोर कहीं से आए और कीर्तन मंडली में यह सोचकर शामिल हो गए कि कीर्तन समाप्त हो जाने पर जब सभी कीर्तनकार चले जाएँगे तब वे इस घर से चोरी कर भाग जाएँगे।

कीर्तन समाप्त होने पर सभी कीर्तनकार चले गए। रात्रि 2 बजे के लगभग चोरों ने एकनाथ के घर में चोरी करना आरंभ किया। घर में जो भी बरतन, कपड़े दिखाई पड़े उन्हें बाँधकर ले जाने लगे, पर उन्हें लगा कि घर में अभी और भी सामान हो सकता है और ऐसा सोचकर वे दरवाजे से पुनः घर में घुसकर इधर-उधर सामान ढूँढ़ने लगे। उसी क्रम में वे उस पूजागृह, देवगृह में पहुँच गए, जहाँ बैठकर संत एकनाथ पूजा-पाठ एवं भगवद्ध्यान किया करते थे।

चोरों ने देखा कि उस घर में एक दीपक जल रहा है और संत एकनाथ आसन पर बैठकर समाधि के आनंद में मग्न हैं। यह दृश्य देखते ही चोरों की दृष्टि बाधित हो गई और उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देने लगा। वे वहाँ से भागने के चक्कर में वहाँ रखे बरतनों पर गिर पड़े। चोरों ने समझा कि शायद यहाँ बैठे महात्मा (संत एकनाथ) के प्रभाव से ही उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा और वे अंधे हो गए हैं। वे सभी वहीं पास में ध्यान-समाधि के आनंद में निमग्न संत एकनाथ के चरणों पर गिर पड़े, रोने लगे और माफी माँगने लगे।

ध्यान में मग्न सहृदय संत एकनाथ ने आँखें खोलीं और उन चोरों की दशा देखकर द्रवित हुए। उन्होंने उन चोरों की आँखों पर हाथ फेरा, उनके हाथ फेरते ही चोरों की दृष्टि वापस लौट आई। यह चमत्कार देखकर चोर चकित हुए। उन सबने संत एकनाथ को सारी बातें बताईं कि कैसे वे चोरी कर उनके घर से भाग रहे थे।

सहृदय संत एकनाथ ने चोरों से कहा—"तुम लोग बहुत थक गए होगे, इसलिए पहले भोजन कर लो, फिर जो भी सामान ले जा रहे थे, वह सब लेकर जाना। हम तुम्हें सामान ले जाने से रोकेंगे नहीं, बल्कि मैं तुम्हें सामान ले जाने में मदद भी कर सकता हूँ। कोई संकोच मत करो। तुम प्रेमपूर्वक भोजन ग्रहण करो, फिर जाओ।"

इतना कहते हुए संत एकनाथ ने अपनी उँगली की अँगूठी निकालकर उन चोरों की ओर रख दी। संत एकनाथ के उस व्यवहार को देखकर उन चोरों के मलिन चित्त में भी हलचल हुई। हम जैसे चोरों के प्रति भी ऐसा प्रेम-व्यवहार! भला यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकते। चोरों ने मन-ही-मन यह सोचा। ग्लानि के भाव से उन सबकी आँखें भर आईं।

वास्तव में गलत संगति से यदि कोई गलत मार्ग पर जा सकता है तो सत्संगति पाकर कोई सत्मार्ग पर क्यों नहीं चल सकता। कई बार दुर्जन या बुरे लोगों की संगति पाकर लोग बुरे मार्ग पर चल पड़ते हैं, पर यदि बुरे मार्ग पर चलने वाले लोगों, दुर्जन लोगों को गलती से भी संतों की संगति मिल जाए तो उनका जीवन सुधर सकता है; क्योंकि

जैसे जल में चट्टानों को फोड़ने की ताकत है, वैसे ही सज्जनता में, सत्संग में, साधु पुरुषों की संगति में, सद्विचारों में दुर्जनता को जीतने की अद्भुत सामर्थ्य है।

बुराई या दुर्जनता से मुक्त होने के लिए सत्संग या संतों की सज्जनता, संगति ही एकमात्र कारगर इलाज है। इसके अतिरिक्त इस मृत्युलोक में दुर्जनता का कोई दूसरा उपचार नहीं है। संत एकनाथ के मधुर व्यवहार और उनके चारों ओर फैली घनीभूत आध्यात्मिक आभा के प्रभाव से चोरों को अपनी भूल का एहसास हुआ और उन चोरों का मन बदल गया।

संत एकनाथ ने अपनी पत्नी गिरिजाबाई को जगाकर रात्रि में रसोई तैयार कराई और चोरों को भोजन कराया। चोर अपने साथ कुछ भी नहीं ले गए। यदि वे कुछ साथ लेकर गए तो संत एकनाथ की सहृदयता, उदारता का स्मरण। उस स्मरण से शुद्ध होकर उन सबने चोरी करना छोड़ दिया। वे सदाचारपूर्वक रहने लगे और बार-बार एकनाथ महाराज के कीर्तन और उपदेश सुनते हुए अंत में सद्गति को प्राप्त हुए। सचमुच सत्संग की कैसी अद्भुत महिमा है। संतों की संगति से सचमुच बुरे-से-बुरे व्यक्ति का जीवन भी बदल सकता है। ❑

एक किसान अपने परिवार के साथ रामपुर गाँव में रहा करता था। उसमें एवं उसकी पत्नी में प्रतिदिन किसी-न-किसी बात पर झगड़ा होता। दोनों एकदूसरे से कुपित हो जाते और फिर कई दिनों तक बातचीत न करते। यह सब देखकर किसान के बैलों ने उन दोनों को शिक्षा देने की सोची। अगले दिन जब किसान खेत में हल लेकर निकला तो दोनों बैल अलग-अलग दिशा में जाने लगे। किसान ने दोनों बैलों को मनाने का बहुत प्रयत्न किया, पर दोनों के अलग-अलग होने से उस दिन की खेती का काम नहीं हो सका।

किसान लौटकर यह बात अपनी पत्नी से कह रहा था तब बैल उससे बोले— "मालिक! हम यह झगड़े का नाटक मात्र आप दोनों को शिक्षा देने के लिए कर रहे थे। हम दोनों तो पशु हैं, यदि हम अलग-अलग दिशा में जाते हैं तो आपका कितना कार्य प्रभावित होता है। आप सोचें कि यदि आप और मालकिन में मतभेद रहेगा तो उससे घर की सुख-शांति कितनी प्रभावित होगी।" किसान और उसकी पत्नी की समझ में आया कि पति और पत्नी, दोनों गाड़ी के दो पहियों की तरह हैं। उनके साथ चलने में ही सुख है अन्यथा विग्रह होने से दोनों का ही नुकसान है, लाभ किसी का नहीं।

बालक की बुद्धिमत्ता

एक राजा ने दरबार में तीन प्रश्न पूछे—"भगवान कहाँ रहते हैं? क्या खाते हैं? क्या करते हैं?" कोई उनका उत्तर न दे सका। मंत्री जवाब देना चाहते थे, पर उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था। घर लौटते हुए रास्ते में उन्हें एक ज्ञानी बालक मिला। उसने उनकी चिंता का कारण पूछा।

प्रधानमंत्री द्वारा सारी बातें बताने के बाद बालक ने उनकी मदद करने का वादा किया। प्रधानमंत्री उसे दरबार में ले गए और राजा को बताया कि उनके प्रश्नों के उत्तर यह बालक देगा। राजा ने आश्चर्य से उसे देखा।

बालक ने कहा—"मैं आपका अतिथि हूँ। पहले आप मुझको कुछ खिलाइए-पिलाइए।" राजा के आदेश पर बालक को एक कटोरे में दूध दिया गया। बालक देर तक कटोरे में उँगली घुमाता रहा। राजा ने पूछा—"यह क्या कर रहे हो?" बालक बोला—"मैं इसमें से मक्खन निकाल रहा हूँ।"

राजा ने हँसकर कहा—"दूध में उँगली घुमाने से मक्खन नहीं निकलता। इसके लिए दूध को गरम करके जमाना, फिर मथना पड़ता है।" बालक ने तपाक से कहा—"मक्खन की भाँति ही भगवान जगत् में हैं। तप, ध्यान और चिंतन से उनका साक्षात्कार संभव है।"

राजा ने पूछा—"अब बताओ, भगवान खाते क्या हैं?" बालक बोला—"महाराज! आपके पहले और अब के आचरण में कितना अंतर है। कहाँ गया आपका अहंकार? आपके अहंकार को भगवान ने खा लिया।"

राजा ने पूछा—"भगवान करते क्या हैं?" बालक ने पूछा—"यह आप गुरु बनकर पूछ रहे हैं या शिष्य बनकर?" राजा ने कहा—"जो ज्ञान देता है, वह गुरु है।" बालक ने कहा—"मगर आपने गुरु को नीचे खड़ा कर रखा है।" यह सुनकर राजा नीचे उतर गया और उसने बालक को सिंहासन पर बिठा लिया। बालक ने कहा—"भगवान यही करते हैं। जब चाहें, किसी को सिंहासन पर बिठा देते हैं और जब चाहें, किसी को उतार देते हैं।" राजा ने प्रसन्न होकर बालक को ढेरों उपहार दिए। ❐

एक धनी व्यक्ति एक मंदिर में पहुँचा और वहाँ बैठे संत से कहने लगा—"महाराज! यह बताएँ कि आज मैं भगवान को क्या चढ़ाऊँ? मेरे पास अपार वैभव है, आप जो आदेश करें, वही मैं भगवान को अर्पित कर दूँ।" संत हँसे और बोले—"मूर्ख! तुझे यह वैभव दिखाई पड़ता है, इसलिए सोचता है कि भगवान को भी यह वैभव लगेगा। जिन्होंने सारी सृष्टि बनाई, क्या वे तेरे हीरे-जवाहरातों के भूखे होंगे। उनके लिए यह मिट्टी-ढेले के समान हैं। उन्हें कुछ चढ़ाना है तो भावनाएँ चढ़ा, समाज को उनका रूप मानकर उसकी सेवा कर, यही असली पूजा है।" धनी व्यक्ति की आँखें खुल गईं।

समग्रता में परिभाषित आध्यात्मिक व्यक्तित्व

आध्यात्मिक व्यक्तित्व समग्रता एवं संपूर्णता में है। यह नई सदी की अपेक्षा है। यह केवल युगीन अपेक्षा ही नहीं है, समाज की शाश्वत अपेक्षा है। दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं—भौतिक व्यक्तित्व और आध्यात्मिक व्यक्तित्व। भौतिक व्यक्तित्व की जो रेखाएँ खीचीं जाती हैं, वे दूसरे प्रकार की ही होती हैं।

अहंकार और स्वार्थ की रेखाओं से जिस व्यक्तित्व का निर्माण होता है, वह भौतिक व्यक्तित्व होता है। जिस व्यक्ति में स्वार्थ एवं अहंकार की मात्रा जितनी कम होगी, वह उतना ही आध्यात्मिक व्यक्तित्व कहलाता है। जिस व्यक्तित्व का निर्माण सच्चाइयों के आधार पर होता है, काल्पनिक रेखाओं के आधार पर नहीं होता, वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व होता है।

समाज में सबसे बड़ा प्रश्न है संबंधों का। व्यक्ति अकेला नहीं है। वह सामाजिक जीवन जीता है। सामाजिक जीवन का अर्थ है संबंधों का जीवन। संबंध-ही-संबंध। पदार्थ के साथ संबंध, परिवार के साथ संबंध, गाँव और राष्ट्र के साथ संबंध, इन संबंधों की पूरी श्रृंखला है। सामाजिक संबंध छोड़े नहीं जा सकते। संबंधों का जीवन आध्यात्मिक व्यक्ति को भी जीना पड़ता है, पर दोनों के जीवन में बड़ा अंतर होता है।

भौतिक व्यक्ति अहंकार और स्वार्थ के साथ संबंध जोड़ता है। उसका कोई भी संबंध ऐसा नहीं होता, जिसकी पृष्ठभूमि में अहंकार नहीं बोलता हो या स्वार्थ की परछाईं न हो। दोनों होते हैं। 'मैं हूँ' यह अनुभूति एक शाश्वत अनुभूति है। अपने अस्तित्व की अनुभूति है—अहं अस्मि—मैं हूँ, किंतु आदमी जब अहंकार के प्रयोग के साथ जुड़ता है तब 'मैं हूँ' यह अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ प्रयोग नहीं होता, प्रतिष्ठा पद के साथ जुड़ा हुआ प्रयोग होता है। 'मैं हूँ' का अर्थ तब हो जाता है—'मैं धनवान हूँ, मैं शासक हूँ, मैं शक्तिशाली हूँ' आदि-आदि।

अस्तित्व-बोध का अहं खतरा पैदा नहीं करता, किंतु दूसरे अहं बहुत बड़े खतरे पैदा कर देते हैं। अहं व्यक्ति को बाँट देता है। यह छोटा है, मैं बड़ा हूँ। इस आदमी-आदमी के बीच एक भेद-रेखा खिंच जाती है। आदमी को विभक्त करने वाली पहली रेखा है—अहंकार। वह अपने आप को एक रूप में देखता है, दूसरे को दूसरे रूप में। मैं कुलीन हूँ, यह कुलीन नहीं है। मैं स्पृश्य हूँ, यह अस्पृश्य है।

ये सारी भेद-रेखाएँ अहंकार के आधार पर खिंची हुई हैं। पूरा समाज इन रेखाओं से भरा पड़ा है। कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है, जब हम जातिवाद को देखकर सोचते हैं कि कितना विभक्तिकरण हुआ है इससे। प्रारंभ में समाज चतुर्वर्ग—चार वर्गों में ही विभक्त था। उसके अनंतर विभाग और भेद-रेखाएँ इतनी हो गईं कि आदमी कहाँ है, उसका पता नहीं चलता। एक जाति में भी इतनी अनंतर जातियाँ हैं कि आदमी उनके नीचे दबा पड़ा है, उसका पता ही नहीं है।

दूसरा तत्त्व है स्वार्थ। यह भी बाँटता है आदमी को। स्वार्थ का अर्थ है—मेरा, केवल मेरे लिए। जिसके साथ मेरा शब्द जुड़ गया, वह भिन्न वस्तु हो गई और जिसके साथ तेरा शब्द जुड़ गया, वह भिन्न वस्तु हो गई। आदमी भी अलग हो गया। 'मेरा बेटा' बेटा अलग हो गया, मेरा अलग हो गया। वह भी बँट गया। मेरा घर और तेरा घर, एक

दीवार खिंच गई। दो सगे भाई जब 'मेरे' 'मेरे' में रहते हैं तो उनके बीच में दीवार खिंच जाती है।

अहंकार ने व्यक्ति को बाँटा है। स्वार्थ ने भी व्यक्ति को बाँटा है। इस प्रकार भौतिक व्यक्तित्व का अर्थ होता है व्यक्तियों को तोड़ना-बाँटना। आध्यात्मिक व्यक्ति तोड़ता नहीं, जोड़ता है। वहाँ तोड़ने वाला कोई तत्त्व नहीं होता। इसी सच्चाई को प्रकट करने के लिए यह घोषणा की गई थी— 'एक्का मणुस्सजाई' मनुष्य जाति एक है।

भौतिक व्यक्ति के मुँह से यह शब्द कभी उच्चारित नहीं हो सकता। जिस मंच से यह घोषणा हुई, वह आध्यात्मिक मंच था। वहाँ व्यक्ति-व्यक्ति में किसी भेद का अनुभव नहीं किया गया। मनुष्य जाति के सिवाय कोई दूसरी जाति ही नहीं है। पदार्थ का भोग करना और पदार्थ के साथ ममत्व जोड़ना—ये दोनों भिन्न बातें हैं। ये दोनों एक नहीं हैं। आध्यात्मिक व्यक्तित्व में पदार्थ का उपयोग अवश्य होता है, पर उसमें ममत्व नहीं जुड़ता। उसमें 'पदार्थ' और 'मेरा' अलग रहते हैं और परस्पर जुड़ते नहीं।

सब जानते हैं कि मेरा कुछ भी नहीं है, फिर भी काल्पनिक रेखाएँ खींची जाती हैं और हर किसी को 'मेरा' मान लिया जाता है। मेरा कुछ होता ही नहीं। सारा भ्रम होता है। जब आदमी ठगा जाता है, तब भान होता है कि मेरा नहीं था, उसे मेरा मानकर बहुत बड़ी भूल की। सारा संसार इस धोखे की अनुभूति कर चुका है, कर रहा है और करता रहेगा। यह भौतिक व्यक्तित्व की प्रकृति है। इससे बचा नहीं जा सकता है।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व केवल यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर निर्मित होता है और भौतिकवादी व्यक्तित्व काल्पनिक रेखाओं के आधार पर निर्मित होता है। ऐसा कहने पर किसी को यह भ्रांति न हो कि आध्यात्मिक व्यक्ति पदार्थ का उपभोग नहीं करता।

वह पदार्थ का उपयोग या उपभोग करता है और वास्तव में वही पदार्थ का सही उपयोग करता है। भौतिकवादी पदार्थ का उपभोग काम करता है। वह प्रत्येक बीज के साथ दुःख को जोड़ देता है। जब आध्यात्मिक व्यक्तित्व बनता है तब सबसे पहले अहंकार और स्वार्थ की बेड़ियाँ टूटती हैं। जब तक ये बेड़ियाँ नहीं टूटतीं, तब तक कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिकता का निर्माण नहीं कर सकता।

आदमी जो दुःख ढो रहा है, उस दुःख का कर्त्ता कौन है? मनुष्य अपने आप समस्याओं को पैदा करता है। वही दुःख उत्पन्न करता है। एक प्रिय व्यक्ति चला जाता है—जो चला गया, उसको कोई दुःख नहीं है। जो गया उसको क्या दुःख होगा? पीछे रहने वाले दुःख करते हैं, रोते हैं, बिलखते हैं। क्या मरने वाला भी रोता-बिलखता है—वह भी तो यहाँ से बिछड़ा है, पर मरने वाला रोता नहीं है। दूसरे इसलिए रोते हैं कि उन्होंने मान लिया था यह मेरा है।

यह सत्य का अतिक्रमण है, सच्चाई को झुठलाने का प्रयत्न है। यह शाश्वत नियम है— संबंधों की इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है। यदि कोई होता तो किसी को छोड़कर नहीं जाता। हम यह अनादिकाल से अनुभव कर रहे हैं कि व्यक्ति चला जाता है, धन चला जाता है, सत्ता और संपदा चली जाती है। यदि ये यथार्थ होते, संबंध शाश्वत होते तो कभी भी नहीं जाते।

संबंध शाश्वत नहीं है। शाश्वत तो जीवन है। भावनानुसार संबंध बनते हैं, परंतु हमें इन संबंधों के बीच स्वयं को बचाकर रखना चाहिए और केवल दूसरों के लिए अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना चाहिए—ऐसा करने वाला ही आध्यात्मिक व्यक्तित्व कहलाता है। अत: हमें अपने व्यक्तित्व को समग्र बनाने का प्रयास करना चाहिए। ❑

संस्कारों का महत्त्व

संस्कार शब्द का अर्थ है परिशोधन अथवा शुद्धीकरण। जीवात्मा जब एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में जन्म लेती है तो उसके पूर्वजन्म के प्रभाव उसके साथ जाते हैं। इन प्रभावों का वाहक सूक्ष्मशरीर होता है, जो जीवात्मा के साथ एक स्थूलशरीर से दूसरे स्थूलशरीर में जाता है। इन प्रभावों में कुछ बुरे होते हैं और कुछ भले। बच्चा भले और बुरे प्रभावों को लेकर नए जीवन में प्रवेश करता है।

संस्कारों का उद्देश्य है कि पूर्वजन्म के बुरे प्रभावों का धीरे-धीरे अंत हो जाए और अच्छे प्रभावों की उन्नति हो। संस्कारों के दो रूप होते हैं। एक आंतरिक रूप और दूसरा बाह्य रूप। बाह्य रूप का नाम रीति-रिवाज है। यह आंतरिक रूप की रक्षा करता है।

हमारे इस जीवन में प्रवेश करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि पूर्वजन्म में जिस अवस्था तक हम आत्मिक उन्नति कर चुके हैं, इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करें। आंतरिक रूप हमारी जीवनचर्या है। यह कुछ नियमों पर आधारित हो, तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है। ऋग्वेद में संस्कारों का उल्लेख नहीं है, किंतु इस ग्रंथ के कुछ सूक्तों में विवाह, गर्भाधान और अंत्येष्टि से संबंधित कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है।

यजुर्वेद में केवल श्रौत यज्ञों का उल्लेख है, इसलिए इस ग्रंथ के संस्कारों की विशेष जानकारी नहीं मिलती। अथर्ववेद में विवाह, अंत्येष्टि और गर्भाधान संस्कारों का पहले से अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। गोपथ और शतपथ ब्राह्मणों में उपनयन गोदान संस्कारों के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा समाप्ति पर आचार्य की दीक्षांत शिक्षा मिलती है।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों से पूर्व हमें संस्कारों के पूरे नियम नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि गृह्यसूत्रों से पूर्व पारंपरिक प्रथाओं के आधार पर ही संस्कार होते थे। सबसे पहले गृह्यसूत्रों में ही संस्कारों की पूरी पद्धति का वर्णन मिलता है। गृह्यसूत्रों में संस्कारों के वर्णन में सबसे पहले विवाह संस्कार का उल्लेख है। इसके बाद गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जात-कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न-प्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन और समावर्तन संस्कारों का वर्णन किया गया है।

अधिकतर गृह्यसूत्रों में अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन नहीं मिलता, क्योंकि ऐसा करना अशुभ समझा जाता था। स्मृतियों के आचार-प्रकरणों में संस्कारों का उल्लेख है और तत्संबंधी नियम दिए गए हैं। इनमें उपनयन और विवाह संस्कारों का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है, क्योंकि उपनयन संस्कार के द्वारा व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम में और विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से था, जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्ण रूप से योग्य सदस्य बनाने के उद्देश्य से उसके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए किए जाते थे, किंतु हिंदू संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना भी था।

वैदिक साहित्य में संस्कार शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। संस्कारों का विवेचन मुख्य रूप से गृह्यसूत्रों में ही मिलता है, किंतु इनमें भी संस्कार शब्द का प्रयोग यज्ञ सामग्री के पवित्रीकरण के अर्थ में किया गया है। वैखानस स्मृति सूत्र में सबसे पहले शरीर संबंधी संस्कारों और यज्ञों में स्पष्ट अंतर मिलता है।

मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार संस्कारों से द्विजों के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है। कुमारिल (ई० आठवीं सदी) ने तंत्रवार्तिक ग्रंथ में इससे कुछ भिन्न विचार प्रकट किए हैं। उनके अनुसार मनुष्य दो प्रकार से योग्य बनता है—पूर्वकर्म के दोषों को दूर करने से और नए गुणों के उत्पादन से। संस्कार ये दोनों ही काम करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारत में संस्कारों का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्त्व था। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज, दोनों का कल्याण करता था। ये संस्कार इस जीवन में ही मनुष्य को पवित्र नहीं करते थे, उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते थे। प्रत्येक संस्कार से पूर्व होम किया जाता था, किंतु व्यक्ति जिस गृह्यसूत्र का अनुकरण करता हो, उसी के अनुसार आहुतियों की संख्या, हव्य पदार्थों और मंत्रों के प्रयोग तय होते थे।

गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या चालीस लिखी है। ये चालीस संस्कार निम्नलिखित हैं—

1. गर्भाधान,
2. पुंसवन,
3. सीमंतोन्नयन,
4. जातकर्म,
5. नामकरण,
6. अन्नप्राशन,
7. चूड़ाकर्म,
8. उपनयन,
9-12. वेदों के चार व्रत,
13. स्नान,
14. विवाह,
15-19. पंच दैनिक महायज्ञ,
20-26. सात पाकयज्ञ,
27-33. सात हविर्यज्ञ,
34-40. सात सोमयज्ञ,

किंतु अधिकतर धर्मशास्त्रों ने वेदों के चार व्रतों, पंच दैनिक महायज्ञों, सात पाकयज्ञों, सात हविर्यज्ञों और सात सोमयज्ञों का वर्णन संस्कारों में नहीं किया है।

मनु ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशांत, समावर्तन, विवाह और अंत्येष्टि इन तेरह संस्कारों का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने भी इन्हीं संस्कारों का वर्णन किया है। केवल केशांत का वर्णन उसमें नहीं मिलता, क्योंकि इस काल तक वैदिक ग्रंथों के अध्ययन का प्रचलन बंद हो गया था।

बाद में रची गई पद्धतियों में संस्कारों की संख्या सोलह दी है, किंतु गौतम धर्मसूत्र और गृह्यसूत्रों में अंत्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं है, क्योंकि अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन करना अशुभ माना जाता था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी संस्कार-विधि तथा पंडित भीमसेन शर्मा ने अपनी षोड्श संस्कार-विधि में सोलह संस्कारों का ही वर्णन किया है। इन दोनों लेखकों ने अंत्येष्टि को सोलह संस्कारों में सम्मिलित किया है। यह कहा जा सकता है कि परमपूज्य गुरुदेव ने इन सारी विस्तृत व्यवस्थाओं को न केवल प्रगतिशील, अपितु एकीकृत रूप में प्रस्तुत किया।

गर्भावस्था में गर्भाधान, पुंसवन और सीमंतोन्नयन तीन संस्कार होते हैं। इन तीनों का उद्‌देश्य माता-पिता की जीवनचर्या इस प्रकार की बनाना है कि बालक अच्छे संस्कारों को लेकर जन्म ले। जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, कर्णबेध—ये छह संस्कार पाँच वर्ष की आयु में समाप्त हो जाते हैं। बाल्यकाल में ही मनुष्य की आदतें बनती हैं, अतः ये संस्कार बहुत जल्दी-जल्दी रखे गए हैं।

उपनयन और वेदारंभ संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम के प्रारंभ में प्रायः साथ-साथ होते हैं। समावर्तन और विवाह संस्कार गृहस्थाश्रम के पूर्व होते हैं। उन्हें भी साथ-साथ समझना चाहिए। वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार इन दोनों आश्रमों की भूमिका मात्र हैं। इस प्रकार संस्कारों का अत्यंत महत्त्व है। वर्तमान परिस्थितियों में इन संस्कारों का यथासंभव प्रयोग करना चाहिए। ❑

एक दिन शरीर की इंद्रियों ने सोचा कि हम लोग परिश्रम करते-करते मर जाते हैं और यह पेट हमारी कमाई को मुफ्त में ही खाता रहता है। अब से हम कमाएँगे तो हम ही खाएँगे अन्यथा काम करना बंद कर देंगे। इस सुझाव पर सबने सर्वसम्मति से हाँ भरी। पेट को इस प्रस्ताव का पता चलने पर उसने सभी इंद्रियों को बुलाकर समझाया—''मैं तुम्हारी कमाई स्वयं नहीं रखता हूँ। जो कुछ तुम देते हो, उसे तुम्हारी शक्ति बढ़ाने के लिए वापस तुम्हारे पास भेज देता हूँ। विश्वास रखो, तुम्हारा परिश्रम तुम्हें वापस मिल जाता है।'' परंतु यह बात किसी इंद्रिय को समझ में नहीं आई। प्रस्ताव के अनुसार सभी इंद्रियों ने कार्य करना बंद कर दिया।

पेट क्षुधा से तड़पने लगा तो वह अन्य अंगों को ऊर्जा दे पाने में भी असमर्थ रहा। परिणामस्वरूप सारे अंगों की शक्ति नष्ट होने लगी। इस स्थिति से सारे अंग घबराए। तब मस्तिष्क ने इंद्रियों से कहा—''मूर्खो! तुम्हारा परिश्रम कोई नहीं खा जाता। वह लौटकर तुम्हें ही वापस मिलता है। यह न सोचो कि दूसरों की सेवा करके तुम्हारा नुकसान होता है, वस्तुतः जो कुछ तुम दूसरों को देते हो, वह ब्याजसहित तुम्हारे पास वापस लौट आता है।'' अब इंद्रियों को सहकार और सहयोग की वास्तविकता समझ में आ गई। उन्होंने पुनः कार्य करना प्रारंभ कर दिया। वस्तुस्थिति किसी कार्य की सफलता का श्रेय किसी एक को क्यों न मिले, वह संभव सामूहिक पुरुषार्थ से ही होता है।

न हार से हारें न जीत से उछलें

खिलाड़ी की भावना से जीवन जीना, हानि-लाभ पर, जय-पराजय पर बहुत ध्यान न देना, अपने कर्त्तव्यपालन का रस भरा आनंद लेते रहना— यह क्रम जिसने भी अपनाया, उसकी सारी उद्विग्नता बात-की-बात में दूर हो सकती है, इस भावनात्मक तथ्य को अंगीकार करने पर जीवन कितना सरल और सरस हो जाता है, इसे ठीक तरह देखना हो तो गुरुदेव के मन:स्तर को गहराई तक पढ़ना चाहिए।

वे छोटे-से काम को बड़े-से-बड़े मनोयोग के साथ करते थे, पर बड़ी-से-बड़ी असफलता मिलने पर भी चेहरे पर खिन्नता की एक शिकन न आने देते थे। हर असफलता को देखकर उन्होंने यही कहा—"इस संबंध में जितना प्रयत्न किया जाना था उसमें न्यूनता रह गई, अब की बार दूनी सतर्कता और तत्परता से इसे करेंगे।"

ताश, शतरंज, नाटक, फुटबाल के खेलों की तरह ही उन्होंने अपने हर क्रियाकलाप को मनोयोग और जिम्मेदारी से खेला तो सही, पर हार में दु:खी होते और जीत में उछलते कभी किसी ने उन्हें नहीं देखा। समुद्र में ज्वार-भाटे आते रहते हैं, पर वे समुद्र से भी महान थे, उनमें न कभी उबाल आया, न अवसाद। कर्मवीर योद्धा की तरह मानव आदर्शों की प्रतिष्ठापना करते हुए भी जीवन-पथ की लंबी राह को अपनी गजगामी चाल से धैर्य और साहसपूर्वक पार करते चले गए।

बौद्धिक दुर्बलता से संत्रस्त उद्वेग और आवेश की आग में जलते-भुनते रहने वालों के सामने गुरुदेव एक आदर्श बनकर जिए। प्रतिकूलताएँ उनके धैर्य, साहस और पुरुषार्थ को देखकर अनुकूलताओं में बदलती चली गईं।

दूसरों द्वारा उत्तेजना दिखाए जाने पर भी अपनी गंभीरता को उथली न बनने देने वाले इस मनस्वी के सामने विरोधियों की सब चालें निष्फल हो गईं और उन्हें अंतत: सहयोगी के रूप में परिणत होना पड़ा।

पहाड़ों से टकराने, तूफानों से जूझने और प्रचंड प्रवाह को उलटने की उनकी हिम्मत इतनी समर्थ सिद्ध हुई कि जो असंभव दिखता था, सो संभव बनकर सामने आया। अगस्त्य ऋषि के समुद्र सोखने की, दधीचि के अस्थि दान की, प्रह्लाद के सत्याग्रह की, हरिश्चंद्र के त्याग-बलिदान की, हनुमान के आत्मदान की कथाएँ पुरानी हो गईं, पर उन आदर्शों को आज भी संभव कर दिखाने में जिस अटूट और अकूत आत्मबल का परिचय गुरुदेव आजीवन देते रहे, वह मानवीय इतिहास में एक अमर गाथा बनकर रहेगा। ❑

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना।
यदृच्छया वर्त्तमानं तं निषेद्धु क्षमेत कः॥

—अष्टावक्र गीता 4/4

अर्थात जिस धीर पुरुष महात्मा द्वारा यह संसार आत्मा रूप में जाना गया है, उस आत्मज्ञानी को अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करने से कौन रोक सकता है ?

सर्वोपरि है कर्म की महत्ता

यह सच है कि मनुष्य परमात्मा के द्वारा सृजित इस सुंदर सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, पर सत्य यह भी है कि उसकी श्रेष्ठता प्रकट तभी होती है, जब वह श्रेष्ठ कर्म करता है, जब वह अच्छे कर्म करता है। एक ओर अपने सांसारिक कर्मों से वह भौतिक प्रगति के सर्वोच्च सोपान को पा सकता है तो वहीं दूसरी ओर अपने आध्यात्मिक कर्मों से वह अपनी चेतना के सर्वोच्च शिखर को छूकर आध्यात्मिकता के शिखर तक पहुँचकर अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, चरम लक्ष्य, परम लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकता है।

इसे प्राप्त कर वह सचमुच शाश्वत सुख व परम आनंद की प्राप्ति कर सकता है। वह भौतिक व आध्यात्मिक दोनों सुखों की प्राप्ति कर सकता है। अस्तु यह स्पष्ट है कि भौतिकता की चरम उपलब्धि करनी हो या आध्यात्मिकता की परम उपलब्धि कर परम आनंद की प्राप्ति करनी हो— दोनों के मूल में कर्म ही है। इसलिए कर्म ही जीवन का सार है।

मनुष्य की मृत्यु के बाद उसका कर्म ही शेष रह जाता है। वह जीवनपर्यंत अपने अच्छे-बुरे कर्मों के कारण ही जाना जाता है और सुख-दुःख प्राप्त करता है और मरने के बाद भी अपने जीवन में किए गए कर्मों के आधार पर ही नूतन जीवन पाता है या परमगति को प्राप्त होता है।

अब तक मानवीय सभ्यता का जो विकास हो सकता है, वह मनुष्य के द्वारा किए गए कार्यों का ही परिणाम है। आज दुनिया में शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, अंतरिक्ष, विज्ञान, सूचना, संचार, तकनीक आदि के क्षेत्र में जो क्रांति, प्रगति दिखाई पड़ रही है, वह मनुष्य के द्वारा किए गए कार्यों, आविष्कारों व प्रयासों का ही परिणाम है।

कर्मशील बनकर ही मनुष्य ने चंद्रमा तथा मंगल ग्रह तक अपनी पहुँच बनाई है। इस संसार में शिक्षा, चिकित्सा, अंतरिक्ष, उद्योग, खेल, व्यवसाय, फिल्म, राजनीति, साहित्य, विज्ञान, अध्यात्म आदि विभिन्न क्षेत्रों में जिन लोगों ने भी सफलता पाई है या सफलता के सर्वोच्च शिखर को छुआ है—उसे उन्होंने अपने कार्यों के बल पर ही किया है।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल या असफल होना हमारे कर्मों के ऊपर ही निर्भर करता है। कर्म से ही व्यक्ति के जीवन की दिशा व दशा तय होती है। कर्म ही व्यक्ति के उत्थान और पतन का कारण है। सत्प्रयास, सत्कार्य, सत्कर्म करने से मनुष्य का उत्थान होता है तो वहीं गलत कर्म, बुरे कर्म करने से मनुष्य का पतन होता है।

कर्मशील व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है तो वहीं कर्महीन, अकर्मण्य व निष्क्रिय व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी सुलभ नहीं है। कर्मशील व्यक्ति का जीवन सुख, समृद्धि, धन, ऐश्वर्य, यश व आनंद से भर जाता है तो वहीं कर्महीन, अकर्मण्य, आलसी, प्रमादी व निष्क्रिय व्यक्ति का जीवन दुःख, दारिद्र्य, कष्ट, क्लेश व अभावों से भर जाता है।

यदि हम जीवन में भौतिक या आध्यात्मिक उत्थान चाहते हैं तो हमें कर्मशील रहना ही होगा। यदि हम जीवन में सुख, समृद्धि, सफलता, शांति व आनंद पाना चाहते हैं तो हमें सदैव कर्मशील होना चाहिए। कर्मशीलता का दूसरा नाम ही जीवन है और अकर्मण्यता व निष्क्रियता का दूसरा नाम

ही मृत्यु है। अकर्मण्य व्यक्ति के लिए तो शरीर का निर्वाह कर पाना भी संभव नहीं होता।

अस्तु इस जीवन में कर्म की महत्ता सर्वोपरि है, सर्वविदित है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं का उदाहरण देते हुए कहा है कि मेरे लिए कोई कर्म करना शेष नहीं, पर फिर भी मैं कर्म करता हूँ। अत: मनुष्य को भी कर्मशील रहना चाहिए। प्रकृति भी सदैव क्रियाशील होकर हमें क्रियाशील होने की प्रेरणा दे रही है। पृथ्वी गतिशील है, सरिताएँ सदैव प्रवाहमान हैं। समुद्र में लहरें उठती ही रहती हैं, सूर्य जगत् को प्रकाशित करने में संलग्न है, गगनमंडल में चंद्रमा भी प्रकाशित है, तारे-सितारे भी टूटते-बिखरते रहते हैं।

अत: हमें भी सदैव गतिशील होना चाहिए, क्रियाशील होना चाहिए, कर्मशील होना चाहिए। जीवन में गति नहीं तो फिर जीवन कैसा? जीवन में गतिशीलता नहीं तो जीवन कैसा? फिर तो जीवन बोझ है, भार है, बेकार है, नीरस है,निरर्थक है। ऐसा जीवन भी क्या कोई जीवन है? ऐसा जीवन तो पशु-पक्षी भी नहीं जीते। फिर हम मनुष्य होकर, श्रेष्ठ प्राणी होकर भी भला ऐसा जीवन क्यों जिएँ? हमें ईश्वर ने ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय, मन, बुद्धि व चेतना प्रदान की है, ताकि हम सदैव कर्मशील रहें, सत्कर्मों में रत रहें।

कर्म शब्द 'कृ' धातु से निकला है। 'कृ' का अर्थ है करना। हमारे द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, वही कर्म है। हम शारीरिक और मानसिक रूप से जो कुछ भी करते हैं, वह सब कर्म ही है। जीवन में कर्म अर्थात कार्य करने का अर्थ है सच्ची लगन, निष्ठा, मेहनत व ईमानदारी से अपने दायित्वों व कर्त्तव्यों को पूर्ण करना।

जब हम किसी कार्य को आधे-अधूरे मन से या किसी कार्य को भार या बोझ समझकर अनियमित रूप से करते हैं तो उस कार्य में हमें पूर्ण सफलता नहीं मिलती, पर जब हम किसी कार्य को पूर्ण एकाग्रता, ईमानदारी व नियमित रूप से आनंदपूर्वक करते हैं तो उस कार्य में हमारी संपूर्ण ऊर्जा का समावेश होता है, जिससे हमें उस कार्य में सफलता मिलती है।

इस संसार के इतिहास में जो लोग भी सफल हुए हैं, वे इसी कारण सफल हुए हैं और जो असफल हुए हैं वे आधे-अधूरे मन से किए गए कार्यों के कारण ही असफल हुए हैं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने कितना सटीक कहा है कि 'असफलता का अर्थ ही है कि सफलता का प्रयास पूरे मन से नहीं हुआ।'

कर्मशील होने का अर्थ यह भी नहीं कि हम बुरे कर्मों में रत रहें। कर्मशील होने का अर्थ अच्छे कर्मों में, सत्कार्यों में लगे रहना है। यह संसार, यह जीवन कर्मप्रधान है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। अच्छे कर्मों का परिणाम सदैव अच्छा होता है और बुरे कर्मों का परिणाम सदैव बुरा ही होता है। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कहा है—

करम प्रधान बिश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥

अर्थात यह विश्व, यह जगत् कर्मप्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस संसार में सभी प्रकार के पदार्थ व वस्तुएँ सुलभ हैं। इस संसार में किसी पदार्थ की कोई कमी नहीं है, पर कर्महीन मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नहीं होता; क्योंकि इस संसार में कुछ पाने के लिए पहले उद्यमरूपी कर्म करना पड़ेगा, तभी कुछ प्राप्त हो सकता है।

एक प्रसिद्ध कहावत है—'जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।' अर्थात मनुष्य जो बीज बोता है, उसे उसी बीज का फल प्राप्त होता है। एक किसान जब अपने खेत में गेहूँ का बीज बोता है तो उसके खेत

में गेहूँ की फसल ही होती है, मक्के की नहीं। जब वह अपने खेत में बबूल का बीज बोता है तो उसके खेत में बबूल ही उगता है आम नहीं। जैसा कि कहा गया है—"बोया बीज बबूल का आम कहाँ से होय।"

उसी प्रकार मनुष्य के द्वारा किया गया हर कार्य ही, हर कर्म ही बीज है। मनुष्य का जीवन ही खेत है। मनुष्य अपने जीवनरूपी खेत में जैसा बीज बोता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। यदि हम अपने जीवनरूपी खेत में अच्छे कर्मों का बीज बोते हैं तो हमें अच्छे फल प्राप्त होते हैं और यदि बुरे कर्मों का बीज बोते हैं तो हमें बुरे फल ही प्राप्त होते हैं।

किसी को दुःख, कष्ट या हानि पहुँचाने के लिए किया गया कर्म बुरा कर्म कहलाता है। झूठ, हिंसा, असत्य, बेईमानी व अनैतिक तरीके से किया गया कर्म बुरा कर्म कहलाता है। वहीं सच्चाई, ईमानदारी, नैतिकता पर आधारित कर्म अच्छा कर्म कहलाता है। किसी की सेवा, सहायता, दान, परोपकार, सहयोग, मदद करना अच्छा कर्म कहलाता है। अच्छे कर्म से ही हमें सुख-शांति व सफलता मिलती है। वहीं बुरे कर्म करने पर हमें दुःख प्राप्त होता है।

भौतिक प्रगति के लिए हमें भौतिक कार्यों में सच्चा प्रयास करना चाहिए और उसी प्रकार आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी हमें निरंतर तदनुरूप योग साधनों में सच्चे मन से लगे रहना चाहिए, कर्मशील रहना चाहिए। यही कर्म का सिद्धांत है। यही कर्म-रहस्य है।

विज्ञान भी इस सिद्धांत को मानता है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार हर क्रिया के प्रति विपरीत दिशा में समान प्रतिक्रिया होती है। जैसे जब हम किसी दीवार पर कोई गेंद जिस गति से फेंकते हैं, तब वह गेंद वापस उतनी ही गति से विपरीत दिशा में लौट आती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि हम अच्छे-बुरे जो भी कर्म करते हैं, उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है और समय आने पर हमें उसका अच्छा या बुरा फल अवश्य ही प्राप्त होता है। अतः हमें हमेशा अच्छे कर्म ही करने चाहिए। हमें सदैव सत्कर्म व सत्प्रयास करना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति अच्छे या बुरे कर्म किससे प्रेरित होकर करता है। अच्छे कर्म करने के लिए मनुष्य का विचार भी अच्छा होना चाहिए; क्योंकि विचार ही कर्म के रूप में प्रकट होता है। यदि मनुष्य का विचार अच्छा है तो उसका कर्म अच्छा होगा और यदि उसका विचार बुरा है तो उसका कर्म भी बुरा ही होगा। मनुष्य का कर्म उसके विचार से ही प्रेरित होता है।

गौतम बुद्ध ने ठीक ही कहा है—"हम आज जो भी हैं, जैसे भी हैं; वह हमारे विचारों का ही परिणाम है। हमारे विचारों से ही हमारे जीवन का निर्माण होता है।" स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है—"आज हम सुख या दुःख, जिस किसी भी स्थिति में हैं, वह अतीत में या पूर्व में हमारे द्वारा किए गए विचारों व विचारों से उत्पन्न कर्मों का ही परिणाम है और हम भविष्य में जैसे भी होंगे, वह भी वर्तमान में हमारे द्वारा किए जा रहे विचारों और उन विचारों से उत्पन्न कर्मों का ही परिणाम होगा।"

वहीं अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापक युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है—"विचार ही कर्म के बीज हैं। कोई भी कर्म करने से पहले उस कर्म का विचार मनुष्य के मन में आता है। फिर व्यक्ति उस विचार से प्रेरित होकर ही अच्छे या बुरे कर्म करता है। व्यक्ति जैसा सोचता है, विचारता है, वह वैसा ही करता है और वह वैसा ही बन जाता है। अस्तु अपने मन को अच्छे व दिव्य विचारों से भर लो जिससे कि तुम अच्छा सोच सको, विचार सको और अच्छे व दिव्य कर्म करते हुए अच्छे व दिव्य मनुष्य बन सको।"

मनुष्य की पहचान उसकी पोशाक या धन-वैभव से नहीं, बल्कि उसके कर्मों से ही होती है, उसके चरित्र से होती है। मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों से ही श्रेष्ठ बनता है और सर्वत्र सुख, सम्मान व सफलता प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य को सदैव श्रेष्ठ कर्म, अच्छे कर्म करते रहना चाहिए। श्रेष्ठ कर्म करना ही मानव का धर्म है। जिस तरह श्रद्धा, भक्ति व तन्मयता के साथ भगवान की पूजा की जाती है, उसी प्रकार मनुष्य को अपना कर्म पूजा की तरह पूर्ण एकाग्रता, तन्मयता व ईमानदारी के साथ करना चाहिए।

मनुष्य को कर्म तो करना चाहिए, पर फलप्राप्ति के लिए अधीर या उतावला नहीं होना चाहिए। बगैर फल की चिंता किए अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए, क्योंकि फल तो समय आने पर ही प्राप्त होगा। जैसा कि संत कबीर ने कहा है—

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय॥

अर्थात हे मन! धैर्य धारण कर, धीरे-धीरे सब कुछ हो जाता है। यदि कोई माली पौधे में सौ घड़ा पानी भी डाल दे, तब भी पौधा एक ही दिन में फल नहीं देने लग जाता है। माली धैर्य के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन पूरे साल करता रहता है, फिर मौसम आने पर ही पेड़ों में फल लगते हैं।

इस संबंध में एक अन्य कवि ने भी क्या खूब कहा है—

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतक सींचो नीर॥

अर्थात हे मनुष्य! अपने कार्य में लगे रहो, पर उसके फल के लिए कभी अधीर मत होओ; क्योंकि फल तो समय आने पर प्राप्त होगा ही। जिस प्रकार किसी भी पौधे में बहुत सारा पानी देने पर वह पौधा उसी समय बड़ा नहीं हो जाता और फल देने नहीं लगता, वह एक निश्चित समय में बड़ा होकर ही फल देता है—उसी प्रकार समय आने पर ही व्यक्ति को अपने कर्मों का फल प्राप्त होता है।

फल या परिणाम की चिंता करने में लाभ कुछ भी नहीं, बल्कि हानि-ही-हानि है। अतः यहाँ स्मरणीय यह है कि फल की चिंता करते हुए कर्म करने से मनुष्य की उस कर्म में एकाग्रता कम हो जाती है।

मेरी हार होगी या जीत, मुझे फल प्राप्त होंगे भी या नहीं, ऐसी चिंता करते हुए कर्म करने से हम उस कर्म को कुशलतापूर्वक संपन्न नहीं कर पाते। हम अपनी संपूर्ण ऊर्जा का समावेश उस कर्म में नहीं कर पाते।

वहीं यदि कर्म का परिणाम हमारे अनुकूल नहीं मिला तो हम घोर निराशा, अवसाद, तनाव में डूब जाते हैं। हमारा आत्मबल कमजोर होने लगता है। हम मन से हार मानने लगते हैं और फिर से उस कार्य हेतु अपना प्रयास नहीं कर पाते।

इस समस्या का समाधान यह है कि हम कर्म करते हुए फल की चिंता न करें; क्योंकि कर्म करना ही हमारे हाथ में है, उस कर्म का फल हमारे हाथ में नहीं है। इसलिए गीताकार ने अर्जुन के माध्यम से संपूर्ण मनुष्य जाति को यह संदेश दिया है—फल की चिंता किए बगैर अपना कर्त्तव्य कर्म करो। कर्म में सफलता मिलेगी या असफलता, मेरी हार होगी या जीत, मेरी आलोचना होगी या प्रशंसा, इसकी चिंता मत करो। सिर्फ अपना कर्म करो।

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

—गीता 2.38

अर्थात जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध (कर्त्तव्य कर्म) के लिए तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से, कर्त्तव्य कर्म करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

वहीं भगवान श्रीकृष्ण गीता—9.27-28 में कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यास योगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

अर्थात हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान करता है और जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान को अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यास योग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

अस्तु भगवान यह स्पष्ट करते हैं कि परिणाम फल की चिंता किए बगैर हम अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहें और अपने हर कर्म को चाहे वह भौतिक उपलब्धि को पाने के लिए किए जाने वाले कर्म हों या फिर आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए किए जाने वाले कर्म हों, उन सभी कर्मों को हम ईश्वर को अर्पित करते चलें, उनके फल व परिणाम को अर्पित करते चलें।

ऐसा करने से हमारे हर कर्म ही अकर्म होते जाएँगे; हमारे हर कर्म निष्काम होते जाएँगे एवं हमारे कर्म संस्काररहित होते जाएँगे, जिससे हमारे किसी भी कर्म से कर्मसंस्काररूपी बंधन विनिर्मित नहीं हो सकेंगे।

हम अपने हर कर्म को स्वयं के लिए नहीं, वरन ईश्वर के लिए किया जा रहा कर्म मानकर स्वयं को अकर्त्ता मानकर, स्वयं को भगवान के हाथों का एक यंत्र, उपकरण मात्र मानकर कर्म करते जाएँगे। तब हमारे द्वारा इस प्रकार किए जा रहे हर कर्म स्वतः ही ईश्वर को अर्पित होते जाएँगे।

हमारे हर कर्म ही पूजा के पुष्प, फल, जल, अक्षत की तरह भगवान को अर्पित होते रहेंगे। हम अपने हर कर्म से ही भगवान की पूजा कर रहे होंगे। तब कर्त्तव्य कर्म करते हुए मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, आलोचना-प्रशंसा की हमें चिंता नहीं होगी। कर्म का अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम भी हमें प्रभावित नहीं कर सकेगा। इस प्रकार किए गए कर्म को ही कर्मयोग कहते हैं। ऐसे कर्म से हमें भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं।

कर्म करके कर्मफल की आकांक्षा न करना, चिंता न करना, किसी मनुष्य की सहायता करके उससे किसी प्रकार की कृतज्ञता की आशा न करना, कोई सत्कर्म करके भी इस बात की ओर दृष्टि न करना कि वह हमें यश और कीर्ति देगा या नहीं—हमें सफलता मिलेगी भी या नहीं। यही निष्काम कर्म है और निष्काम कर्म ही कर्मयोग है।

ज्ञान के बाद और दूसरे लोक में जाना नहीं पड़ता, पुनर्जन्म नहीं होता। परंतु जब तक ज्ञान नहीं होता, ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, तब तक संसार में लौटकर आना पड़ता है। उबला हुआ धान बोने से फिर पौधा नहीं होता। ज्ञानरूपी अग्नि से यदि कोई उबाला हुआ हो, तो उसे लेकर और सृष्टि का खेल नहीं होता।

स्वामी विवेकानंद ने बहुत ही सुंदर कहा है कि कर्त्तव्य कर्म करते हुए, स्वदेश अथवा स्वधर्म के लिए युद्ध करते समय मनुष्य की मृत्यु भी हो जाए तो योगीजन जिस परम पद को ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं, वही पद उस मनुष्य को उसके उस कर्म से प्राप्त हो जाता है।

अस्तु हमें धैर्यपूर्वक अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए। साथ ही हमें उपनिषद् का यह संदेश भी सदैव स्मरण रखना चाहिए कि

उठो, जागो और तब तक संघर्ष करो,
जब तक मंजिल न मिल जाए।

❑

प्रकृतिगत जीवन का रहस्य

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के 39वें श्लोक में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं—

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥

इस श्लोक में 'ज्ञेयम्' अर्जुन की मुख्य चिंता है। वे सही कदम उठाने में असमर्थ क्यों हैं, जबकि वे जानते हैं कि वास्तविकता क्या है या इससे भी ज्यादा कि सही क्या है ? अर्जुन उस लोभ के बढ़ते प्रभाव के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं, जिसने उनके स्वजनों को इतना अंधा बना दिया है कि वे अनुचित भी नहीं देख सकते। यह तथ्य पुनः अर्जुन की निश्छल दृष्टि प्रस्तुत करता है।

इस श्लोक का स्वर इस बात का द्योतक है कि वह वास्तविक विनाश को उतना महत्त्व नहीं देता, जितना उस दोष को जो विनाश से उत्पन्न होगा, परंतु अपनी दृष्टि की निश्छलता और पवित्रता के बावजूद, अर्जुन वध करने के इस पाप से उस सत्य मार्ग को पहचानने में विफल हो जाते हैं, जो उसकी प्रतीक्षा में है।

वे भगवान से ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने की ओर उन्मुख होते हैं। जीवन में ऐसे क्षणों में व्यक्ति ईश्वर के चरणों में गिरता है। ऐसे क्षण, जब वह देखना चाहता है, किंतु देख नहीं पाता; जब वह कर्म करना चाहता है, किंतु कर्म करने में असमर्थ रहता है।

जब हम प्रकृति की यंत्र-रचना का अनुसंधान करते हैं तो हमारे सामने यह तथ्य स्पष्ट होता है कि विश्व-ब्रह्मांड की प्रत्येक रचना प्रत्येक दूसरी रचना के साथ प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध है। प्रत्येक वस्तु अनवरत दूसरी चीज से प्रभावित हो रही है। सागर की कोई भी लहर अपने में स्वतंत्र नहीं है। निश्चित रूप से उसकी अपनी पृथक सत्ता है। प्रत्येक लहर का अपना मार्ग है, जिसका वह अनुकरण करती है, किंतु यह मार्ग प्रत्येक दूसरी लहर के मार्ग पर निर्भर है।

किसी भी व्यक्ति का जीवन इस विश्व ब्रह्मांडीय जीवन के सागर की एक लहर है। इस सागर की प्रत्येक लहर दूसरी लहर के मार्ग को प्रभावित करती है। निश्चित रूप से मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी है।

वह ईश्वर के सबसे बड़े उपहार—स्वतंत्र इच्छा का धनी है। इस इच्छा के कारण उसे कोई कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है, किंतु इस कर्म का परिणाम भी उसे भुगतना पड़ता है। प्रतिक्रिया सदैव क्रिया के बराबर होती है।

जब लोग सही आचरण करते हैं, तब स्वाभाविक रूप से उसी प्रकार का वातावरण भी उत्पन्न होता है और जब ऐसे प्रभाव की प्रधानता हो जाती है तो व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ भी इससे प्रभावित होती हैं। यदि पवित्रता और दिव्यता के वातावरण में कोई व्यक्ति उचित मार्ग का अनुकरण करता है तो आस-पास का अदृश्य सात्त्विक प्रभाव उसकी रक्षा करता है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपने प्रयास में विफल होता है तो उसकी विफलता के पीछे कार्य करने वालों की अदृश्य प्रकृति भी हो सकती है।

किसी प्रकार की बौद्धिक विवेचना उसकी विफलता का रहस्योद्घाटन नहीं कर सकती। उसे तब दूसरे स्तर पर उठना और यह स्वीकार करना पड़ता है कि उसके पीछे प्रकृति का कार्य और शक्ति काम करते हैं। उसे प्रकृति के नियमों और उन सबमें अंतर्निहित सृष्टि के संविधान को समझना पड़ता है।

जीवन जब प्रकृति में होता है तो हमें प्रकृतिगत जीवन जीना पड़ता है। इसमें परिस्थिति और प्रारब्ध का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। हमें सतत सत्कर्म करते रहना चाहिए। परिणाम तो प्रकृति अंतत: प्रदान कर ही देती है। इस प्रकार का जीवन ही व्यक्ति को शांति, तृप्ति, संतोष और उत्कृष्टता प्रदान करता है। ❑

सम्राट अशोक मृत्युशय्या पर थे। अपनी समस्त संपदा दान देने के बाद भी उनके मन में एक असंतोष का भाव बना हुआ था। भगवान बुद्ध के आह्वान पर उन्होंने करोड़ों मुद्राएँ दान देने का संकल्प लिया था, परंतु संकल्प पूर्ण होने से पूर्व ही वे रुग्ण होकर क्षुब्ध रहने लगे। उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा क्या करें, जिससे अंतर्मन में तृप्ति और संतोष का भाव आ सके। राजकोश का धन भी धीरे-धीरे क्षीण हो रहा था। संकल्प पूर्ति हेतु सम्राट अशोक ने निजी वस्तुएँ भी दान देनी प्रारंभ कर दीं।

एक दिन उनके पास संघ से एक भिक्षु आया। उस दिन सम्राट अशोक के पास दान देने हेतु कोई निज की वस्तु भी न थी। क्षुब्ध हृदय से उन्होंने पास रखा आँवला उठाया और उसे भिक्षु को दे दिया और उससे बोले—"बंधु! अब मेरे पास दान देने को ज्यादा कुछ शेष नहीं है। राजकोश पर सम्राट होने के नाते जितना मेरा अधिकार था, उसका उपयोग करते हुए दान दे चुका हूँ। इसी फल को स्वीकार करें।" भिक्षु ने आँवले का चूर्ण बनाकर प्रसाद में मिलाया और वह प्रसाद संघ के समस्त भिक्षुओं को बँट गया। हजारों भिक्षुओं की तृप्ति का समाचार सम्राट अशोक को मिला। उसे सुनकर उनके अंतर्मन में तृप्ति का वह भाव जागा, जो उन्हें सहस्त्रों स्वर्णमुद्राएँ दान देकर भी नहीं प्राप्त हुआ था। उन्हें अनुभव हुआ कि दिए गए दान का संतोष उसमें निहित परिस्थितियों के आधार पर मिलता है, न कि उसकी विशालता के आधार पर।

प्रज्ञावतार के लीला केंद्र

विगत अंक में आपने पढ़ा कि जाग्रत एवं जीवंत तीर्थों की स्थापना व उन शक्तिकेंद्रों के माध्यम से जनकल्याण के उद्देश्य को गायत्री शक्तिपीठों द्वारा पूर्ण किए जाने की पूज्य गुरुदेव की संकल्पना लगभग साकार होने को थी। इस योजना से संबंधित दिशा-निर्देश परमपूज्य गुरुदेव ने कार्यकर्त्ताओं को पूर्व में ही दे तो दिए थे, किंतु फिर भी कुछ लोगों के मन में इससे संबंधित नए विचार जन्म ले रहे थे और वे अपने-अपने ढंग के सुझाव भी पूज्यवर के समक्ष रख रहे थे। पूज्य गुरुदेव सभी जिज्ञासुओं को बड़ी ही धीरतापूर्वक सुनकर उनका यथायोग्य मार्गदर्शन कर रहे थे। पूज्यवर की वाणी जहाँ एक ओर उन्हें अभीष्ट प्रयोजन की वास्तविकता का बोध करा रही थी तो वहीं दूसरी ही ओर उनमें इस कार्य को संपन्न करने का उत्साह भी भर रही थी। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

प्रवास और स्थगन

सन् 1979 में गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना का संकल्प अवतरित हुआ था। पहले 24, फिर 240 और उसके बाद 2400 की संख्या पार करते हुए प्रज्ञावतार के लीला केंद्र गणना से परे होते चले गए। चौबीस शक्तिपीठों की घोषणा के समय बहुतों को लग रहा था कि असंभव नहीं भी कहें, किंतु दु:साध्य कर्म तो है ही। इस तरह सोचते या संशित रहने वालों के मन उस समय आशा–उत्साह की रोशनी से भर गए, जब सात महीने के भीतर ही संकल्पित संख्या पूरी हो गई।

कुछ शक्तिपीठों का संकल्प ही नहीं, निर्माण भी चमत्कारी ढंग से पूरा हुआ। उनके उद्घाटन, गायत्री माता की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए गुरुदेव के पास अनुरोध आने लगे। उन अनुरोधों को यथाक्रम स्वीकार किया गया और गुरुदेव कुछ स्थानों पर प्राण–प्रतिष्ठा, शक्तिपीठों के स्थापना–समारोहों में गए भी सही। स्थापना, प्राण–प्रतिष्ठा कार्यक्रमों में जाने का क्रम करीब डेढ़ साल तक चला।

प्राण–प्रतिष्ठा कार्यक्रमों के दौरान भी नई जगह शक्तिपीठों का और उनके लिए संकल्पों का आविर्भाव हुआ। जिन स्थानों पर स्थापना हुई, उन सत्र का विवरण अपने आप में एक महाकुंभ का विषय है। फिर भी कुछ उल्लेख उन स्थापनाओं के पीछे निहित दैवी योजनाओं का संकेत देता है।

गुजरात में एक कस्बा है छीपड़ी। खेड़ा जिले के इस छोटे से कस्बे में बुधाभाई नामक कार्यकर्त्ता उन दिनों रहते थे। पीढ़ियों से यहीं वास कर रहे बुधाभाई के परिवार में थोड़ी–सी जमीन थी। शक्तिपीठ स्थापना के संकल्प लिए जाने लगे तो बुधाभाई अपने दोनों भाइयों को साथ लेकर शांतिकुंज गए। वहाँ उन्होंने अपने निवास को शक्तिपीठ की स्थापना के लिए समर्पित कर दिया।

गुरुदेव ने पूछा कि अपना घर दे दोगे तो रहोगे कहाँ? इस पर बुधाभाई आदि का कहना था जहाँ

गायत्री माता और आप रखेंगे, वहीं रह लेंगे, पर इस जगह तो माँ को ही रहना है। बुधाभाई ने बाद में परिजनों को बताया।

वर्षों पहले परिवार के किसी संदर्भ में तीनों भाइयों ने संकल्प लिया था कि जहाँ हम लोग रहते हैं, उसे गुरुदेव के काम में लगाएँगे। गुरुदेव से तब इस तरह का अनुरोध भी किया था, पर उन्होंने आगे यथावसर उपयोग करने की बात कहकर जगह अपने पास ही रखने के लिए कहा था।

अब शक्तिपीठों की स्थापना का सिलसिला शुरू हुआ तो तीनों भाइयों के मुँह से एक दिन अनायास एक साथ ही एक ही बात निकली। उनका कहना था कि गुरुदेव के लिए हम लोगों ने अपना जो मकान समर्पित किया था, वहीं शक्तिपीठ बनाते हैं। मकान में ज्यादा जगह नहीं थी, फिर भी निवेदन-सो-निवेदन। गुरुदेव के पास जाकर अपना संकल्प व्यक्त किया। वहाँ से पहली ही बार में स्वीकृति मिली।

बुधाभाई ने कहा जगह छोटी है, कम पड़ेगी। गुरुदेव ने कहा जाग्रत स्थान आकार से नहीं, भावना और तप से बनते हैं। तुम काम शुरू करो और एक बार काम शुरू हुआ तो निरंतर चलता ही रहा। कुछ ही हफ्तों में पूरा हो गया। गुरुदेव तब स्थापना, प्राण-प्रतिष्ठा के लिए गए तो उन्हीं के निर्देश पर तीन दिन का साधना सत्र चला।

शामला जी, गुजरात के ही एक स्थानीय तीर्थ में परिजनों को छोटी-सी जगह मिली। साबरकांठा के परिजनों ने वहाँ मिल-जुलकर छोटा-सा निर्माण किया। शुरू दिनों में इस शक्तिपीठ को लोग मढ़िया के नाम से पुकारते थे। निर्माणकार्य के दौरान ही स्थानीय परिजन गुरुदेव के पास गए तो प्रेरणा मिली कि मढ़िया को चार मंजिला बना लो। कार्यालय, सत्संग, साधना और आगंतुकों के आवास के लिए जगह निकल आएगी।

एक संकोच आड़े आ रहा था कि गायत्री की प्रतिमा भूमितल पर रहेगी। निर्माण उस तल से ऊपर तक जाएँगे। इस पर गुरुदेव ने कहा संकोच की जरूरत नहीं है। गायत्री की स्थापना वाला क्षेत्र छोड़कर भवन के ऊपर तक जाने दो।

वैसे कोई हर्ज नहीं है, लेकिन स्थानीय लोगों को परहेज हो तो उसका निराकरण हो जाएगा, वैसा ही किया गया। आज यह एक चार मंजिला विशाल तीर्थ पहाड़ियों की गोद में स्थित है।

मध्य प्रदेश के शुजालपुर जिले में एक कस्बा है खोकरांकलां। वहाँ शक्तिपीठ की स्थापना के लिए बड़ी संख्या में परिजन आए। इनमें भोपाल के भी कई कार्यकर्त्ता थे। संकल्प लिया गया—यहाँ भी जगह कम ही थी। गुरुदेव ने परिजनों से कहा अरे इस शक्तिपीठ में तो पहले ही दिन बड़ी संख्या में लोग आएँगे—कम-से-कम आठ सौ। उनके और बाद में आने वालों के लिए भी थोड़ी ज्यादा जगह चाहिए। जमीन के लिए नए सिरे से प्रयास हुए और पहले से ज्यादा जगह में शक्तिपीठ का निर्माण हुआ।

शक्तिपीठों की स्थापना का एक ही क्रम रहा। परिजन गुरुदेव के पास आते—उनकी साक्षी में संकल्प करते। गुरुदेव उनके हाथ में रक्षासूत्र बाँधते हुए वचनबद्ध करते। यह प्रक्रिया गुरुदेव के कक्ष में ही संपन्न होती। वहाँ से माताजी के पास जाते माताजी आशीर्वादस्वरूप उन्हें कुछ प्रसाद देतीं। प्रसाद का एक हिस्सा तो माताजी के सामने ही सिर माथे पर रखते हुए ग्रहण कर लिया जाता। दूसरा हिस्सा संकल्पित स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता अथवा वहाँ के परिजनों में वितरित हो जाता।

कांवट में एक कार्यकर्त्ता थे वीरेंद्र अग्रवाल, बाद में वे जयपुर आकर बस गए। शक्तिपीठों के लिए गुरुदेव का प्रवास शुरू हो गया था। गुरुदेव राजस्थान में किसी शक्तिपीठ की स्थापना के लिए

जा रहे थे। रास्ते में जयपुर के पास नीम का थाना के पास कांवट पड़ता था। गुरुदेव का प्रवास कार्यक्रम बना तो मार्ग निश्चित हुआ कि वे यहाँ से होकर निकलेंगे। प्रवास आरंभ हुआ—नीम का थाना में गुरुदेव कुछ देर के लिए रुके। वीरेंद्र अग्रवाल वहीं पहुँचे। गुरुदेव से कहा कि आप यहाँ रुके हैं। पास ही आपका (वीरेंद्र अग्रवाल का) घर है।

रात वहीं निवास कीजिए, घर पवित्र हो जाएगा। गुरुदेव ने कहा कि जब अपना ही घर है तो जरूर आऊँगा! पर अभी नहीं। तुम कांवट में शक्तिपीठ बना दो। मैं वहीं आकर पूरे चौबीस घंटे रहूँगा। गुरुदेव की इस प्रेरणा को परिवार के सभी लोगों ने हृदयंगम किया और कुछ ही महीनों में वहाँ एक भव्य शक्तिपीठ बनकर तैयार हो गया।

उपरोक्त प्रसंग तो बानगी स्वरूप है। गुरुदेव के समय में और उनके बाद भी स्थापित हुए शक्तिपीठों का अलग-अलग इतिहास है। सैकड़ों शक्तिपीठों में वे उन्नीस स्थानों पर ही गए। भूमिपूजन उनके हाथों अगणित के हुए। अप्रैल, 1982 में उन्होंने यकायक बाहर जाना रोक दिया। कहा कि आगे का काम माताजी को देखना है—वे यहीं यानी शांतिकुंज रहते हुए ही उन आत्माओं, विभूतियों को संस्कारित करेंगे, जिन्हें आगे चलकर विभिन्न क्षेत्रों में समाज का नेतृत्व करना है। फिर उन्होंने दो बार यही दोहराया—नेतृत्व शब्द से कुछ लोगों के मन में शायद राजनीति की गंध आए। इसलिए कहता हूँ कि नए मनुष्य को तैयार करने के लिए जिन जाग्रत और संस्कारवान आत्माओं को दायित्व निभाने हैं, उन्हें तैयार करने के लिए काम करना है। (क्रमशः)

एक संत प्रचंड तपस्या में लीन थे। उनकी तपस्या के आलोक से दिग्दिगंत में हलचलें होने लगीं। उनका तप-तेज बढ़ते देख इंद्र घबराए और उनको तपस्या से विरत करने का उपाय सोचने लगे। सोची-समझी युक्ति के तहत देवराज इंद्र एक राजा का वेश बनाकर संत के पास पहुँचे और उन्हें अपने स्वर्ण-आभूषण प्रदान करते हुए बोले—"प्रभु! आप निरासक्त पुरुष हैं। मैं शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ, आप मेरी यह तुच्छ संपदा अपने समीप रख लें। मैं बाद में सुरक्षित होने पर इन्हें वापस ले जाऊँगा।"

संत को इसमें कुछ गलत न लगा, उन्होंने राजा को आभूषण झोंपड़ी के कोने में रख देने को कहा। प्रारंभ में उनके मन में कोई भाव न उमड़ा, पर धीरे-धीरे उनको यह चिंता सताने लगी कि कहीं उस राजा की धरोहर को कुछ हो न जाए। थोड़ी-सी आसक्ति करुणावश जगी तो वह तृष्णा में बदल गई। उनका ध्यान तपस्या में कम, आभूषणों के रख-रखाव में ज्यादा लगने लगा। कुछ ही काल में उनका मार्ग निरासक्ति से आसक्ति का हो गया। इसीलिए साधकों को कामिनी-कांचन से दूर रहने को कहा गया है; क्योंकि छोटी-सी आसक्ति, कभी भी बड़ी-सी वासना में बदल सकती है।

कमर दरद का यौगिक निदान
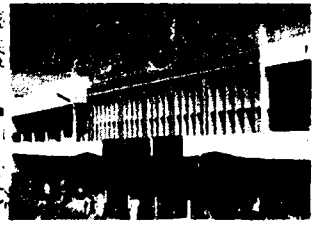
पीठ के निचले भाग में दरद की समस्या, जिसे कमर दरद (लो बैक पेन) के नाम से जाना जाता है, यह एक गंभीर और कभी-कभी प्राणघातक सिद्ध होने वाली समस्या है। ऐसा समझा जाता है कि कमर दरद की समस्या विशेषकर वृद्धावस्था में उत्पन्न होती है, परंतु वास्तविकता यह है कि यह किसी भी उम्र में अलग-अलग कारणों से उत्पन्न हो जाती है। दरद का लंबे समय तक अथवा निरंतर बने रहना अत्यंत कष्टकारक होता है।

इसके समाधान के लिए सही कारणों का निदान एवं उचित उपचार-प्रक्रिया का चयन आवश्यक होता है। वस्तुतः कमरदरद का कारण रीढ़ के निचले भाग तथा उसको सहारा देने वाली मांसपेशियों, ऊतकों आदि में तनाव, चोट या दबाव होता है। इसकी वजह शारीरिक और मानसिक दोनों हो सकती है।

रीढ़ का निम्न भाग ही शरीर का अधिक भार उठाता है। किसी कार्य को करते समय, झुकते-मुड़ते हुए, भार उठाते हुए या बैठे हुए—शरीर का अधिकतम भार रीढ़ के निचले भाग अर्थात कमर के हिस्से पर होता है। लगातार यहाँ के हिस्से की मांसपेशियों और लिगामेंट्स पर दबाव पड़ता रहता है, जिससे कई बार इस स्थान पर चोट या खिंचाव हो जाता है और दरद उत्पन्न हो जाता है।

गलत तरह से बैठने, लंबे समय तक बैठने अथवा बाहरी चोट लगने से भी स्लिप डिस्क की समस्या हो जाती है। कैल्सियम, विटामिन्स आदि की कमी, रूमेटायड आर्थराइटिस, कशेरुकाओं की बीमारी, गलत तरीके से बैठना, फोन, टैब, कंप्यूटर आदि पर एक ही स्थिति में लगातार बैठना, पीठ का कैंसर व अन्य कोई गंभीर बीमारी, रीढ़ में संक्रमण, बड़ी आँत में सूजन, अधिक वजन, गलत खान-पान, सोने का गलत तरीका, मानसिक तनाव, अवसाद, नशा जैसे अनेकों ऐसे कारण हैं, जो कमर दरद को उत्पन्न करते हैं। आयुर्वेद में कमर दरद का कारण वात और कफ संबंधी दोषों को माना जाता है।

कमर दरद के उपचार के लिए एलोपैथी में दरदनिवारक, स्टेराइड्स युक्त औषधि, ऑपरेशन आदि अनेक उपायों को प्रयुक्त किया जाता है, परंतु समुचित समाधान के मिलने की सुनिश्चितता नहीं होती, साथ ही ऐसे उपचार के दुष्प्रभावों के रूप में कई बार गंभीर परिणाम भी सामने आते हैं। अतः आधुनिक समय में कमर दरद की बढ़ती गंभीरता और इसके समुचित-संतुलित व सुरक्षित उपचार व प्रबंधन के उपायों-तकनीकों को खोजा जाना अत्यंत आवश्यक है।

इस दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। इस शोध में योग चिकित्सा के माध्यम से विभिन्न शारीरिक व मानसिक कारणों से उत्पन्न कमर दरद के समुचित प्रबंधन की तकनीकों को खोजने का सार्थक प्रयास किया गया है।

चूँकि योग अध्यात्म-साधना की एक सर्वोत्कृष्ट विधा होने के साथ-साथ एक समग्र

चिकित्सा विज्ञान भी है, इसलिए इस शोध में योग चिकित्सा के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कमर दरद के समुचित एवं समग्र समाधान के उपाय के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यह शोधकार्य सन् 2012 में शोधार्थी पारुल अग्रवाल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 ए0 के0 दत्ता जी के कुशल निर्देशन में संपन्न किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का विषय है—**'यौगिक मैनेजमेन्ट ऑफ लो बैक पेन।'**

वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन के प्रयोग के लिए शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश के बरेली शहर स्थित 'शील अस्पताल' एवं 'मिथिला अस्पताल' से कमर दरद के 100 मरीजों का चयन किया, जिनकी उम्र 30 से 55 वर्ष के मध्य थी। महिला-पुरुष का अनुपात समान रखा गया (50 महिला मरीज एवं 50 पुरुष मरीज)। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित मरीजों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण में जो मानदंड अपनाए गए; वे हैं—(1) ब्लड शुगर, (2) सिरम यूरिक एसिड, (3) एस० एल० आर० लेवल, (4) रुटीन एंड माइक्रोस्कोपिक यूरिन टेस्ट, (5) एक्स-रे।

परीक्षण के उपरांत एक माह की अवधि तक नियमित एक घंटा शोधार्थी द्वारा प्रायोगिक समूह के मरीजों को योगाभ्यास कराया गया। योगाभ्यास के अंतर्गत जिन तकनीकों को सम्मिलित किया गया; वे हैं—

(1) सूक्ष्म व्यायाम—10 मिनट

(2) आसन—अर्द्धशलभासन, मकरासन, भुजंगासन, ताड़ासन—20 मिनट

(3) प्राणायाम—नाड़ीशोधन प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम—20 मिनट

(4) ओम् उच्चारण—10 मिनट।

इसके अतिरिक्त कुछ समय यथास्थिति टहलने के लिए कहा गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पुन: सभी का पूर्व की भाँति स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीय रीति से विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने यह पाया कि चयनित योगाभ्यास का कमर दरद की समस्या पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा समस्या को उत्पन्न करने वाले कारणों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध अध्ययन में शोधार्थी को जो सार्थक और सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं, इसका मुख्य कारण योग चिकित्सा के अंतर्गत सम्मिलित की गई विशिष्ट यौगिक तकनीकें हैं। अध्ययन में प्रयुक्त सभी तकनीकें स्वतंत्र रूप से अत्यंत विशिष्ट और संपूर्ण स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व पर सार्थक प्रभाव डालने वाली हैं। इस शोध में चयनित कमर दरद के उपचार एवं प्रबंधन में इन यौगिक विधियों की भूमिका और प्रभाव का तथ्यात्मक विवेचन किया गया है।

अध्ययन में सम्मिलित प्रथम यौगिक तकनीक है—सूक्ष्म व्यायाम। यह शरीर के जोड़ स्थान को मजबूत बनाने वाला अभ्यास है। इसमें श्वसन के माध्यम से आंतरिक अंगों के प्रति सजगता उत्पन्न होती है, जिससे किसी स्थान विशेष की समस्या का सही से उपचार या समाधान प्राप्त करने में सहायता मिलती है। यह शरीर के जोड़ों में लचीलापन उत्पन्न करने तथा जकड़न व खिंचाव को कम करने के लिए एक अत्यंत प्रभावकारी तकनीक है।

फिजियोथैरेपी चिकित्सा में भी इस तकनीक का व्यापक प्रयोग किया जाता है। इस अध्ययन में सूक्ष्म व्यायाम के अंतर्गत कटि प्रदेश, कमर आदि शरीर के निचले भाग से संबंधित अभ्यासों को प्रमुखता दी गई है। प्रयोग में पवनमुक्तासन, तितलीआसन

जैसी विशिष्ट सूक्ष्म व्यायाम की क्रियाओं को सम्मिलित रखा गया है।

दूसरी यौगिक तकनीक आसन की है। अलग-अलग आसनों का शरीर एवं मन की समस्याओं एवं क्षमताओं पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है।

इस प्रयोग में कमर दरद के समाधान में सहायक आसन समूह का चयन किया गया है, जैसे—अर्द्धशलभासन। यह आसन हाथों, जाँघों, पैरों और पिंडलियों को एक साथ प्रभावित कर स्वास्थ्य एवं सुदृढ़ता प्रदान करता है। पेट की चर्बी को कम करने तथा कमर दरद में यह अत्यंत प्रभावकारी माना गया है।

इसके नियमित अभ्यास से रीढ़ की हड्डी में मजबूती आती है व लचीलापन उत्पन्न होता है, जिसका सीधा असर कमर दरद के कारणों का समाधान करने के रूप में दिखाई देता है। इसके बाद मकरासन का क्रम है। मकरासन का तात्पर्य है नदी में मगरमच्छ के शांत लेटे रहने की अवस्था। इस आसन की यही मुद्रा है। इसमें आँख बंद कर श्वास-प्रश्वास पर ध्यान करते हुए शरीर व मन को बिलकुल शांत रखने का अभ्यास किया जाता है।

यह तनाव, अवसाद, बेचैनी व मांसपेशियों से जुड़ी समस्याओं के उपचार में अत्यंत प्रभावकारी माना गया है। स्लिप डिस्क और साइटिका—दोनों समस्याओं में यह आसन समान रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

अगले क्रम में सम्मिलित आसन है—भुजंगासन। इस आसन के नियमित अभ्यास से रीढ़ में मजबूती और पीठ की मांसपेशियों में लचीलापन आता है। चिंता, तनाव व अवसाद को कम करने वाले ग्रंथि संस्थान पर भी यह सकारात्मक प्रभाव डालता है। आसन समूह का अंतिम आसन ताड़ासन है।

इस आसन से समस्त अंगों की मांसपेशियों में लचीलापन आता है। गलत तरह से सोने अथवा बैठने से उत्पन्न समस्याओं; जैसे पीठ दरद, कमर दरद आदि में यह अत्यंत प्रभावकारी अभ्यास सिद्ध होता है। शरीर को ऊपर की ओर खींचने से कमर पर पड़ने वाला अतिरिक्त दबाव ऊपर की ओर खिंच जाता है, जिससे दरद में काफी राहत मिलती है। इससे यह आसन शारीरिक और मानसिक संतुलन भी प्रदान करता है।

शोध अध्ययन की तृतीय यौगिक तकनीक प्राणायाम है। इस प्रयोग में नाड़ीशोधन एवं भ्रामरी प्राणायाम को सम्मिलित किया गया है। नाड़ीशोधन प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य शरीर के समस्त नाड़ी तंत्र को स्वस्थ व सुचारु बनाना है। इसका नियमित अभ्यास शरीर, मन और भावनाओं में संतुलन बनाए रखने में सहयोगी होता है।

चूँकि यह एक श्वास-प्रश्वास के अभ्यास की तकनीक है, अतः फेफड़े, हृदय और मस्तिष्क के स्नायुओं पर तो इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता ही है साथ ही मन को शांत व एकाग्र रखने तथा क्रोध, तनाव, चिंता, अवसाद आदि मानसिक विकारों के स्तर को कम करने में भी यह अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध होता है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण यह कमर दरद के उपचार में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अगला प्राणायाम भ्रामरी प्राणायाम है। इसमें भौंरे की गुंजन जैसी आवाज करते हुए प्रश्वास की क्रिया करनी होती है। इसका अभ्यास शारीरिक थकान व मानसिक तनाव—दोनों स्थितियों में समान रूप से लाभ प्रदान करता है। रक्त-परिसंचरण तंत्र को मजबूत बनाने तथा मानसिक शांति व स्थिरता की प्राप्ति के लिए यह एक उपयोगी तकनीक है।

यौगिक तकनीकों में सम्मिलित अंतिम सोपान है—ओउम्-साधना। ओउम् ध्यान को मंत्र-साधना

भी कहा जाता है। इस ध्यान-विधि से रक्त परिसंचरण नियमितता, रीढ़ के सहयोगी तंत्र में संतुलन व मजबूती तथा गहरी मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है। यह तनाव को दूर करने में भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है।

यौगिक साधना के क्षेत्र में इसे शरीर व मन की नकारात्मक ऊर्जा को दूर करने की एक प्रभावी तकनीक के रूप में माना जाता है। इन यौगिक तकनीकों के साथ पैदल चलने को भी कमर दरद के उपचार में एक महत्त्वपूर्ण तकनीक के रूप में सम्मिलित किया गया है।

वैसे टहलना स्वयं में एक संपूर्ण व्यायाम है और इसके शारीरिक व मानसिक लाभों से सभी परिचित हैं, परंतु कमर दरद के यौगिक प्रबंधन में इसे आवश्यक मानते हुए निर्देशित किया गया है यदि नियमित न टहल पाने की स्थिति हो तब भी मरीज को सप्ताह में न्यूनतम तीन घंटे की अवधि तो पैदल चलने में लगानी ही चाहिए।

इस शोध अध्ययन में उक्त सभी यौगिक तकनीकों को शोधार्थी द्वारा यौगिक चिकित्सा के रूप में कमर दरद के उपचार का सार्थक व समग्र उपाय खोजने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। योग चिकित्सा का प्रभाव समग्र जीवन पर पड़ता है।

इसकी तकनीकों का अभ्यास न केवल समस्या के समाधान तक सीमित रहता है, अपितु यह अभ्यासकर्त्ता के संपूर्ण व्यक्तित्व को बाह्य एवं आंतरिक रूप से ऊर्जावान बनाता है एवं आरोग्य प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त इस चिकित्सा के आध्यात्मिक लाभ भी स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं। यह शोध भी योग विज्ञान की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर कमर दरद जैसी गंभीर समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत करता है। ❑

सिक्खों के गुरु संत गोविंदसिंह अपने दरबार में बैठे थे, तभी दो दूत भागते हुए उनके सम्मुख पहुँचे। उनको चिंतित देख गुरु गोविंद सिंह ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा— ''चिंता न करो। शांत होकर बताओ कि क्या हुआ है?'' दूत रोते हुए बोले—''महाराज! सरहिंद के नवाब ने दुर्ग पर कब्जा कर लिया है। सरदार जोरावर सिंह और सरदार फतेह सिंह नहीं रहे।'' यह सुनते ही दरबार में सन्नाटा छा गया, किंतु गुरु गोविंद सिंह शांत भाव से बोले—''यह बताओ कि उन्हें वीर की मृत्यु मिली या कायर की?'' दूत बोले— ''महाराज! वे दोनों अंतिम साँस तक प्राणपण से लड़े।'' सरहिंद के नवाब ने उन्हें कैद कर लिया और उनसे बोला कि यदि तुम इसलाम कबूल कर लोगे तो तुम्हें जिंदा छोड़ देंगे और इस दुर्ग का नवाब बना देंगे। परंतु दोनों सरदारों ने मृत्युधर्म स्वीकारना ही उचित समझा तथा हँसते-हँसते प्राण गँवा दिए।'' गुरु गोविंद सिंह बोले—''फिर उन्हें वीरों की नहीं, महावीरों की मृत्यु मिली है। धर्म की रक्षा करते हुए प्राण त्यागने वाले अपना नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाते हैं। उनकी मृत्यु पर शोक करना तो उनकी शहादत का अपमान है।'' दूतों सहित सारे दरबार के चेहरे से विषाद की रेखा हट गई और वीरता का अभिमान छलक उठा।

वृक्षों में जीवन है

वैदिक काल से ही भारतवर्ष में प्रकृति के निरीक्षण-परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति रही है। इसी प्रक्रिया में वनस्पति जगत् का भी विश्लेषण किया गया। प्राचीन वाङ्मय में इसके अनेक संदर्भ ज्ञात होते हैं। अथर्ववेद में पौधों को आकृति तथा अन्य लक्षणों के आधार पर सात उपविभागों में बाँटा गया, यथा—(1) वृक्ष (2) तृण (3) औषधि (4) गुल्म (5) लता (6) अवतान (7) वनस्पति। आगे चलकर महाभारत, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, शुक्रनीति, बृहत् संहिता, पराशर, चरक, सुश्रुत, उदयन आदि द्वारा वनस्पति, उसकी उत्पत्ति, उसके अंग, क्रिया, उनके विभिन्न प्रकार, उपयोग आदि का विस्तार से वर्णन किया गया, जिसके कुछ उदाहरण हम निम्न संदर्भों में देख सकते हैं।

पौधे जड़ नहीं होते, अपितु उनमें जीवन होता है। वे चेतन जीवन की तरह सरदी-गरमी के प्रति संवेदनशील रहते हैं, उन्हें भी हर्ष और शोक होता है। वे मूल से पानी पीते हैं, उन्हें भी रोग होता है। ऐसे अनेक तथ्य हजारों वर्षों से हमारे यहाँ ज्ञात थे तथा अनेक ग्रंथों में इनका उल्लेख भी मिलता है। महाभारत के शांतिपर्व के 184वें अध्याय में महर्षि भरद्वाज व भृगु का संवाद है। उसमें महर्षि भरद्वाज पूछते हैं कि वृक्ष चूँकि न देखते हैं, न सुनते हैं, न गंध व रस का अनुभव करते हैं, न ही उन्हें स्पर्श का ज्ञान होता है, फिर वे पंचभौतिक व चेतन कैसे हैं?

इसका उत्तर देते हुए महर्षि भृगु कहते हैं— "हे मुने! यद्यपि वृक्ष ठोस जान पड़ते हैं तो भी उनमें आकाश है, इसमें संशय नहीं है, इसी से इनमें नित्यप्रति फल-फूल आदि की उत्पत्ति संभव है। वृक्षों में ऊष्मा या गरमी है, उसी से उनके पत्ते, छाल, फल-फूल कुम्हलाते हैं, मुरझाकर झड़ जाते हैं। इससे उनमें स्पर्श ज्ञान का होना भी सिद्ध है।

"यह भी देखा जाता है कि वायु, अग्नि, बिजली की कड़क आदि होने पर वृक्षों के फल-फूल झड़कर गिर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वे सुनते भी हैं। लता वृक्ष को चारों ओर से लपेट लेती है और उसके ऊपरी भाग तक चढ़ जाती है। बिना देखे किसी को अपना मार्ग नहीं मिल सकता। अतः इससे सिद्ध है कि वृक्ष देखते भी हैं। पवित्र और अपवित्र गंध से तथा नाना प्रकार के धूपों की गंध से वृक्ष नीरोग होकर फूलने लगते हैं।

"इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष सूँघते भी हैं। वृक्ष अपनी जड़ से जल पीते हैं और कोई रोग होने पर जड़ में औषधि डालकर उनकी चिकित्सा भी की जाती है। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष में रसनेंद्रिय भी है। जैसे मनुष्य कमल की नाल मुँह में लगाकर उसके द्वारा ऊपर को जल खींचता है, उसी प्रकार वायु की सहायता से वृक्ष जड़ों द्वारा ऊपर की ओर पानी खींचते हैं।

सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणां चैतन्यं न विद्यते॥

"वृक्ष कट जाने पर उनमें नया अंकुर उत्पन्न हो जाता है और वे सुख-दुःख को ग्रहण करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वृक्षों में भी जीवन है। वे अचेतन नहीं हैं। वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचता है, उसे उसके अंदर रहने वाली वायु और अग्नि पचाती है। आहार का परिपाक होने से वृक्षों में स्निग्धता आती है और वे बढ़ते हैं।"

इसके अतिरिक्त महर्षि चरक तथा उदयन आचार्य ने भी वृक्षों में चेतना तथा चेतन होने वाली

अनुभूतियों के संदर्भ में वर्णन किया है। महर्षि चरक कहते हैं—'**तच्चेतनावद् चेतनञ्च**' अर्थात प्राणियों की भाँति उनमें (वृक्षों में) भी चेतना होती है। वे आगे कहते हैं—'**अत्र सेन्द्रियत्वेन वृक्षादीनामपि चेतनत्वम् बोद्धव्यम्।**' अर्थात वृक्षों में भी इंद्रिय है, अतः इनमें चेतना है। इसको जानना चाहिए। उसी प्रकार उदयन कहते हैं—

वृक्षादयः प्रतिनियतभोक्त्रयधिष्ठिताः
जीवनमरणस्वप्नजागरणरोगभेषज
प्रयोगबीजजातीयानुबन्धनुकूलोपगम
प्रतिकूलापगमादिभ्यः प्रसिद्ध शरीरवत्।

अर्थात वृक्षों को भी मानव शरीर के समान निम्न अनुभव निश्चित होते हैं—जीवन, मरण, स्वप्न, जागरण, रोग, औषधि प्रयोग, बीज, सजातीय अनुबंध, अनुकूल वस्तु को स्वीकार करना आदि व प्रतिकूल वस्तु को अस्वीकार करना।

बंगाल के प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री डॉ. गिरिजा प्रसन्न मजूमदार ने 'हिस्ट्री ऑफ साइंस इन इंडिया' में वनस्पति शास्त्र से संबंधित अध्याय में महामुनि पराशर द्वारा रचित ग्रंथ 'वृक्ष आयुर्वेद' का वर्णन किया है। बंगाल के एन0एन0 सरकार के पिता, जो आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान थे, ने इसकी पांडुलिपि खोजी थी। मजूमदार महोदय ने जब इस प्राचीन ग्रंथ को पढ़ा तो वे आश्चर्यचकित हो गए; क्योंकि उसमें बीज से वृक्ष बनने तक का इतना वैज्ञानिक विश्लेषण था कि वह किसी भी पाठक को अभिभूत करता था।

उन्होंने इस ग्रंथ का सार अँगरेजी में अनूदित किया। यह ग्रंथ हजारों वर्ष पूर्व की भारतीय प्रज्ञा की गौरवमयी गाथा कहता है। वे कहते हैं—"एक पुस्तक है—वृक्ष आयुर्वेद। उसके लेखक थे महामुनि पराशर। इस ग्रंथ में जो वैज्ञानिक विवेचन है, वह विस्मयकारी है। इस पुस्तक के 6 भाग हैं-बीजोत्पत्ति कांड, वानस्पत्य कांड, गुल्म कांड, वनस्पति कांड, विरुध वल्ली कांड, चिकित्सा कांड।'

इस ग्रंथ के प्रथम भाग बीजोत्पत्ति कांड में आठ अध्याय हैं, जिनमें बीज के वृक्ष बनने तक की गाथा का वैज्ञानिक पद्धति से विवेचन किया गया है। इसका प्रथम अध्याय है बीजोत्पत्ति सूत्राध्याय, इसमें महर्षि पराशर कहते हैं—

आपोहि कललं भुत्वा यत् पिण्डस्थानुकं भवेत्।
तदेवं व्यूहमानत्वात् बीजत्वमधि गच्छति॥

पहले पानी जेली जैसे पदार्थ को ग्रहण कर न्यूक्लियस बनता है और फिर वह धीरे-धीरे पृथ्वी से ऊर्जा और पोषक तत्त्व ग्रहण करता है। फिर उसका आदि बीज के रूप में विकास होता है और आगे चलकर कठोर बनकर वृक्ष का रूप धारण करता है। आदि बीज यानी प्रोटोप्लाज्म के बनने की प्रक्रिया है, जिसकी अभिव्यक्ति बीजत्व अधिकरण में की गई है।

दूसरे अध्याय भूमि वर्गाध्याय में पृथ्वी का उल्लेख है। इसमें मिट्टी के प्रकार, गुण आदि का विस्तृत वर्णन है। तीसरा अध्याय वन-वर्गाध्याय का है। इसमें 14 प्रकार के वनों का उल्लेख है। चौथा अध्याय वृक्षांग सूत्राध्याय (फिजियॉलाजी) का है। इसमें प्रकाश संश्लेषण यानी फोटोसिंथेसिस की क्रिया के लिए कहा है—'**पत्राणि तु वातातपरञ्जकानि अभिगृहन्ति।**' वात CO_2 आतप Sunlight रंजक क्लोरोफिल।

यह स्पष्ट है कि वात—कार्बन-डाइऑक्साइड, सूर्य प्रकाश, क्लोरोफिल से अपना भोजन वृक्ष बनाते हैं। इसका स्पष्ट वर्णन इस ग्रंथ में है। पाँचवाँ पुष्पांग सूत्राध्याय है। इसमें कितने प्रकार के फूल होते हैं, उनके कितने भाग होते हैं, उनका उस आधार पर वर्गीकरण किया गया है। उनमें पराग कहाँ होता है, पुष्पों के हिस्से क्या हैं आदि का उल्लेख है।

फलांग सूत्राध्याय में फलों के प्रकार, फलों के गुण और रोग का वर्गीकरण किया गया है। सातवें वृक्षांग सूत्राध्याय में वृक्ष के अंगों का वर्णन करते हुए

पराशर कहते हैं—पत्रं (पत्ते), पुष्पं (फूल), मूलं (जड़), त्वक् (शिराओं सहित त्वचा), कांडम् (स्टेम्), सारं (कठोर तना), सारसं (Sap), निष्कासन (Excretions), बीजं (बीज), प्ररोहम् (Shoots) इन सभी अंगों का परस्पर संबंध होता है।

आठवें अध्याय में बीज से पेड़ के विकास का वर्णन किया गया है। बीज के बारे में जो कहा गया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। बीज और पत्रों की प्रक्रिया में वे कितनी गहराई में गए, यह तय करना आज के वनस्पति शास्त्र के विद्वानों का दायित्व है। पराशर कहते हैं—

बीज मातृका तु बीजस्यम् बीज,
पत्रन्तुबीजमातृकायामध्यस्थमादि।
पत्रञ्च पातृकाछदस्तु तनुपत्रकवत्,
मातृकाछादनञ्च कञ्चुकमित्याचक्षते॥
बीजन्तु प्रकृत्या द्विविधं,
भवति एकमातृकं द्विमातृकञ्च।
तत्रैकपत्रप्ररोहानां वृक्षाणां
बीजमेकमातृकं भवति।
द्वि पत्र पत्र प्ररोहानान्तु द्विमातृकञ्च।

'मोनोकॉटिलिडेन और डायकॉटिलिडेन' अर्थात एक बीजपत्री और द्विबीजपत्री बीजों का वर्णन है। किस प्रकार बीज धीरे-धीरे रस ग्रहण करके बढ़ते हैं और वृक्ष का रूप धारण करते हैं। कौन-सा बीज कैसे उगता है, इसके वर्गीकरण के साथ उसमें स्पष्ट वर्णन है। यह भी वर्णन है कि बीज के विभिन्न अंगों के कार्य अंकुरण (जर्मिनेशन) के समय कैसे होते हैं—

अंकुरनिर्विते बीजमात्रकाया
रसः संप्लवते प्ररोहांगेषु।
सदा प्ररोहः स्वातन्त्रेन भूम्याः
पार्थिवरसं गृहणाति तदा बीज
मातृका प्रशोषमा पद्यमे।

वृक्ष रस ग्रहण करता है, बढ़ता है। आगे कहा गया है कि जड़ बन जाने के बाद बीजमात्रिका यानी बीजपत्रों की आवश्यकता नहीं रहती, वह समाप्त हो जाती है। फिर पत्तों और फलों की संरचना के बारे में कहा है कि वृक्ष का भोजन पत्तों से बनता है। पार्थिव रस जड़ में से स्यंदिनी नामक वाहिकाओं के द्वारा ऊपर आता है, यह मानो आज के 'एसेंट ऑफ सैप' का वर्णन है।

यह रस फिर पत्तों में पहुँच जाता है; जहाँ पतली-पतली शिराएँ जाल की तरह फैली रहती हैं। ये शिराएँ दो प्रकार की हैं—'उपसर्प' और 'अपसर्प'। वे रस-प्रवाह को ऊपर भी ले जाती हैं और नीचे भी ले जाती हैं। दोनों रास्ते अलग-अलग हैं। गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध भी वे रस ऊपर कैसे ले जाती हैं, इसके बारे में आज के विज्ञान में पूरा ज्ञान नहीं है। जब तक कैपिलरी एक्शन का ज्ञान न हो तब तक यह बताना संभव नहीं है और यह ज्ञान बहुत समय तक पश्चिमी देशों को भी नहीं था।

कैपिलरी मोशन संबंधी भौतिकी के सिद्धांत का ज्ञान बॉटनी के ज्ञान के साथ आवश्यक है। जब पत्तों में रस प्रवाहित होता है, तब क्या होता है इसे स्पष्ट करके ग्रंथ में कहा गया है। 'रंजकेन पश्चयमानात' किसी रंग देने वाली प्रक्रिया से यह पचता है—यानी फोटोसिंथेसिस। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

इसके पश्चात वे कहते हैं कि '**उत्पादं-विसर्जयन्ति**' हम सब आज जानते हैं कि पत्तियाँ फोटोसिंथेसिस से दिन में आक्सीजन निकालती हैं और रात में कार्बन-डाइऑक्साइड। दिन में कार्बन-डाइऑक्साइड लेकर भोजन बनाती हैं; अतिरिक्त वाष्प का विसर्जन करती हैं, जिसे ट्रांसपिरेशन कहते हैं—इन सबका वर्णन इसमें है।

इसमें आगे कहा गया है कि जब उसमें से वाष्प का विसर्जन होता है तब उसमें ऊर्जा उत्पन्न होती है, यानी श्वसन की क्रिया का इसमें वर्णन है। संक्षेप में यह वर्णन बताता है कि किस प्रकार

रस का ऊपर चढ़ना, पत्तियों में जाना, भोजन बनाना, फिर श्वसन द्वारा ऊर्जा उत्पन्न करना होता है।

इसके अतिरिक्त आज भी कोई दूसरी प्रक्रिया वृक्षों के बढ़ने की ज्ञात नहीं है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वृक्ष में जीवन होता है। इसलिए वृक्ष को देव मानकर इसका पूजन भारतीय संस्कृति में किया जाता है। इसी शाश्वत सत्य को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य हमको करना चाहिए। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

चंदा वृद्धि की सूचना

हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा (सदस्यता शुल्क) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	300 रुपये
2. आजीवन 20वर्षीय चंदा (भारत में)	6000 रुपये
3. वार्षिक चंदा (विदेश में)	2800 रुपये

अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	170 रुपये
2. वार्षिक चंदा (विदेश में)	1500 रुपये

आशा ही नहीं, विश्वास है कि परिजन-पाठक इस प्राण-प्रवाह को गतिशील बनाए रखेंगे। ***—व्यवस्थापक***

वाणी संबंधी तप

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की चौदहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को शरीर संबंधी तप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि देवता, विप्र, गुरुजन और जीवनमुक्त महापुरुष का भलीभाँति पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना—यह शरीर संबंधी या शारीरिक तप कहलाता है। यहाँ ध्यानाकर्षण का बिंदु यह है कि शारीरिक तप का मूल आधार त्याग करने से है, जैसे भली भाँति पूजन करने के लिए अहंकार का त्याग अनिवार्य है, शुद्धि रखने में आलस्य व प्रमाद को त्यागना अनिवार्य हो जाता है तथा सरलता अपनाने के लिए कुटिलता का त्याग जरूरी है। ब्रह्मचर्य भी आसक्ति एवं विषय-भोग के प्रति रुचि को त्यागने से सधता है तो वहीं अहिंसा का पालन तभी संभव हो पाता है, जब व्यक्ति अपने हितों को किसी भी कीमत पर पूर्ण करने के दुर्भाव को त्यागता है। इन सारे गुणों को मिलाकर श्रीभगवान शारीरिक तप या शरीर संबंधी तप में गिनते हैं।

वे कहते हैं कि देवगण, जिनमें पाँच ईश्वरकोटि देवशक्तियाँ—भगवान विष्णु, शिव, गणेश, शक्ति तथा सूर्य सम्मिलित हैं, तैंतीस कोटि शास्त्रोक्त देवता सम्मिलित हैं, उनका निष्काम भाव से पूजन शरीर संबंधी तपों में पहला तप है। परमपूज्य गुरुदेव ने देवता शब्द को देने के भाव से परिभाषित किया है। जिसके पास देने का अधिकार एवं भाव दोनों हों, वो देवता बन जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसी देवशक्तियों का पूजन, विप्र अर्थात संस्कारयुक्त व्यक्तियों का पूजन, साथ ही प्रज्ञा को प्राप्त कर चुके जीवनमुक्त, तत्त्वज्ञानी महापुरुषों का पूजन भी शारीरिक तप की श्रेणी में आता है। इसके अतिरिक्त वे शुचिता को भी शरीर संबंधी तप में गिनते हैं और फिर आर्जव अर्थात सरलता को, निरहंकारिता को भी शारीरिक तपों में गिनते हुए ब्रह्मचर्य के पालन को शारीरिक तप में सम्मिलित करते हैं। सबसे अंत में वे अहिंसा को भी इन्हीं गुणों की श्रेणी में लेते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ *15*॥

शब्दविग्रह—अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्, स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते।

शब्दार्थ—जो (**यत्**), उद्वेग न करने वाला (**अनुद्वेगकरम्**), प्रिय और हितकारक (**प्रियहितम्**), एवं (**च**), यथार्थ (**सत्यम्**), भाषण है (**वाक्यम्**), तथा (जो) (**च**), वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है (**स्वाध्याय अभ्यसनम्**), वही (**तत्,**

एव), वाणी संबंधी (**वाङ्मयम्**), तप (**तपः**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात जो किसी को भी उद्विग्न न करने वाला, सत्य और प्रिय तथा हितकारक भाषण है, उस स्वाध्याय का अभ्यास भी वाणी संबंधी तप कहा जाता है। यहाँ श्रीभगवान कहते हैं कि जो वचन वर्तमान में या भविष्य में किसी भी तरह के उद्वेग या विक्षेपों को जन्म देने वाला न हो, ऐसा अनुद्वेगकर वचन वाणी संबंधी तप का पहला गुण है।

इसके बाद उसका सत्य होना, अहंकार व अभिमान से रहित होना दूसरा गुण है। कई बार व्यक्ति सत्य तो बोलता है, पर वह सत्य यदि कटु व अप्रियकर हो तो मन में विक्षेप व कष्ट को ही जन्म देता है।

यहाँ भगवान कहते हैं कि उसका इस तरह से बोला जाना कि वह प्रियकर हो तथा क्रूर भाव, रूखे-तीखेपन से मुक्त हो, अपमानजनक शब्द उसमें न हों तथा वह प्रेमयुक्त, मीठे, सरल और शांत वचनों से कहा जाए तो वह प्रिय वाक्य कहलाता है।

वाणी ऐसी होनी चाहिए, जो प्रिय एवं हितकारक हो—यदि ऐसा न किया जा सके तो उससे श्रेष्ठ तो कुछ भी न बोलना होता है। कटु सत्य बोलने से श्रेष्ठ तो वाणी का इस तरह से प्रयोग करना है, जो कि मधुर हो और सामने वाले व्यक्ति को, सुनने वाले व्यक्ति को जीवन की दिशा प्रदान कर सके।

अगर हम सत्य वाणी बोलकर दूसरों पर पत्थर फेंकने के समान चोट करते हैं तो उससे किसी का भी हित नहीं होता, इसलिए संवेदनशील बनकर ही अपनी बात कहनी चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरों से प्रीतिकर, रुचिकर बोलने के लिए झूठ बोला जाए। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण बोलने में यह सीमा निर्धारित करते हैं कि वह बोला जाए जो उद्वेग को पैदा न करे, जो प्रिय हो, हितकारक हो, यथार्थ हो एवं सत्य हो।

यहाँ पर प्रिय बोलने का अर्थ यह भी नहीं है कि दूसरों की झूठी प्रशंसा की जाए, जिससे उनको खूब आनंद आए, जैसे—सामने वाले व्यक्ति को यदि यह पता है कि वह सुंदर नहीं है, पर तब भी उससे ऐसा कहा जाए कि तुम परम सुंदर हो तो ऐसा झूठ बोलने से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। इससे श्रेष्ठ ऐसे शब्दों का चयन करके सत्य बोलने से है, जिससे उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग मिले।

सामान्य वाणी के 18 दोष शास्त्र गिनाते हैं। जैसे—अपेतार्थ अर्थात निरर्थक बोलना, एक ही बात को बार-बार बोलना, अशुद्ध-अश्लील बोलना, आवश्यकता से ज्यादा बोलना, अत्यंत विस्तार से बोलना, कटु बोलना, संदिग्ध भाव से बोलना, दीर्घांत पदोच्चारण करके बोलना, श्रोता से मुँह फेरकर बोलना, असत्य बोलना, चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के विरुद्ध बोलना, कर्णकटु बोलना, कठिनता से उच्चारण करने वाले शब्दों को बोलना, अस्त-व्यस्त तरीके से बोलना, अत्यंत न्यून बोलना, अकारण बोलना एवं अनर्गल बोलना।

इसके अतिरिक्त शास्त्रों में जो वाणी के गुण कहे गए हैं; वो इस प्रकार हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, मधुरता, सुस्पष्टता, उदारता, उदात्तता, ओज, प्रियता, श्रेष्ठ शब्द, गंभीरता, भाविकता, अर्थ की व्यापकता आदि।

इस तरह के बोलने को भगवान पहले गुण में, पहले वाणी संबंधी तप में गिनते हैं। इसके उपरांत वे स्वाध्याय को भी वाणी संबंधी तप में गिनते हैं। स्वाध्याय का अर्थ महर्षि पतंजलि ने उन ग्रंथों के अध्ययन से लगाया है जो कि हमें

जीवनमुक्ति में सहायता प्रदान करें। '**स्वाध्यायः मोक्षशास्त्रस्याध्ययनम्**' अर्थात मोक्षप्रद शास्त्रों का पारायण ही स्वाध्याय है तथा इनको बार-बार पढ़कर इनको अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करना अर्थात उसका अभ्यास, उसको भी वे वाणी संबंधी तप का ही अंग मानते हैं। इस तरह इस श्लोक में वाणी से किए जाने वाले तपों का उल्लेख है। (क्रमशः)

स्वामी रामतीर्थ के विद्यार्थी जीवन की घटना है। वे लाहौर में बी०ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, पर उनके पास परीक्षा-शुल्क जमा करने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं थे। उन्होंने अपने पास संचित सारा धन दे डाला, पर इसके बाद भी पाँच रुपये देने शेष रह गए। अन्यमनस्क भाव से वे जा रहे थे तो उन्हें चिंतित देखकर चंदू हलवाई ने उनको पुकारा और उनकी उदासी का कारण पूछा। चंदू हलवाई की दुकान उनके महाविद्यालय के समीप ही थी और स्वामी रामतीर्थ वहाँ नियमित क्रम में जाया करते थे। रामतीर्थ ने उन्हें अपनी आर्थिक विषमता से अवगत कराया, जिसे सुनकर चंदू हलवाई ने उन्हें तुरंत पाँच रुपये निकालकर दे दिए। कालांतर में स्वामी रामतीर्थ ने बी०ए० की परीक्षा तो उत्तीर्ण की ही, साथ ही वे शासकीय महाविद्यालय में गणित के प्रोफेसर भी बन गए। सरकारी नौकरी लगने पर वे प्रतिमाह पाँच रुपये का मनीऑर्डर चंदू हलवाई को भेजने लगे।

एक दिन जब वे उसकी दुकान के सामने से निकले तो चंदू हलवाई बड़ी विनम्रता से बोला—"आप मेरी दुकान से कुछ लेते नहीं, पर आप हर माह रुपये भेजते हैं। अब तक पैंतीस रुपये आ चुके हैं। ये किसलिए?" स्वामी रामतीर्थ ने उत्तर दिया—"यदि आपने उन विषम परिस्थितियों में मुझे पाँच रुपये न भेजे होते तो मैं इस योग्य कभी न बन पाता। यह तो आपकी सहृदयता का साधारण प्रत्युत्तर है।" भारतीय संस्कृति ऐसे ही अद्भुत उदाहरणों से परिपूर्ण है।

समय की पुकार सुनें

(गतांक से आगे)

परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की यह मौलिकता रही है कि वे आध्यात्मिक विचारों को एक ऐसी सुगमता के साथ प्रस्तुत करती हैं कि हर साधक एवं श्रोता के अंतरंग में वे बातें गहराई के साथ आत्मसात् हो जाती हैं। अपने इस प्रस्तुत उद्‌बोधन में वंदनीया माताजी ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण सूत्र की ओर इशारा करती प्रतीत होती हैं। वे कहती हैं कि आध्यात्मिक साधनाओं को करने का मूल्य तभी है, जब हम समय की पुकार को सुन सकें। भक्ति-भावना का भी मूल्य तभी है, जब हम उन सिद्धांतों को जीवन में अपना सकें। युधिष्ठिर से लेकर अनेकों आख्यानों का संदर्भ देते हुए वंदनीया माताजी हर गायत्री परिजन से ये आह्वान करती हैं कि हम वातावरण के अंधकार से भरे इस समय में समाज में सार्थक परिवर्तन लाने के लिए प्रतिबद्ध हो सकें। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

समाज में परिवर्तन हो

बेटे! आपके दिमागों में भी तहलका मचे और बाहर समाज में भी परिवर्तन हो। परिवार, समाज के लोग भी विवश हो जाएँ—अपने आचरण को श्रेष्ठ बनाने के लिए, अपना व्यक्तित्व ऊँचा उठाने के लिए और परिष्कृत होने के लिए। प्रतिभा का जब तक परिष्कार नहीं होगा, तब तक कौन व्यक्ति किसके साथ बैठने वाला है ? कोई क्यों बैठेगा ?

सभ्यता और शालीनता आज हमारे यहाँ परिवारों से समाप्त होती जा रही है। हमारे समूचे राष्ट्र से भी सभ्यता व शालीनता समाप्त होती जा रही है। हर व्यक्ति को सभ्य और शालीन होना चाहिए।

हर व्यक्ति को कायदे-करीने से रहना चाहिए; ताकि वह जहाँ कहीं भी जाए और जो कुछ भी कहे, वह नपा-तुला और संतुलित ही कहे। इसके लिए हमें आगे आना चाहिए। हमें जनसंपर्क के लिए लोगों के बीच जाना ही होगा।

नहीं साहब! हम कैसे जाएँगे ? देखिए हम तो व्यापारी हैं। हम तो ऑफिसर हैं। हम तो गाड़ी में चलते हैं, तो पैदल कैसे घूमेंगे ? हाँ बेटा! आपको पैदल ही घूमना पड़ेगा। यह वैसा ही समय है, जैसा कि भगवान बुद्ध के समय में धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए लोगों ने अपनी आहुतियाँ दी थीं। आहुतियों का मतलब शरीर की आहुति नहीं। वे लोग मरे तो नहीं थे, पर भीतर से उनकी समाजसेवा की भावनाएँ थीं। हमारी आहुति, हमारे समर्पण की भावना से कितने ही व्यक्ति उनके साथ थे।

उन्होंने पहले तो यहीं सारे देश में प्रचार-प्रसार किया और बाद में विदेशों में भी बौद्ध धर्म फैलता हुआ चला गया था और लोगों ने कहा कि हम अकेले नहीं, सपरिवार आपके साथ हैं। अशोक का पूरा परिवार था, अन्यान्य थे, जिसमें न जाने

कितने मूर्द्धन्य व्यक्ति भी शामिल थे। वैसा ही समय आ गया है। गुरुजी ने भी आपको पुकारा है और यह कहा है कि आप हमारे साथ कदम-से-कदम और कंधे-से-कंधा मिलाकर के चलिए।

राजी या बिना राजी—गुरुकार्य करें

आप कहेंगे माताजी! यह क्या हुआ? हम तो कुछ ऐसी बात सुनना चाहते थे जैसे कि स्वर्ग की बात, कुछ कहानियाँ, कुछ किस्से आदि। बेटे! कहानी-किस्से, तो तुमने इन सबसे सुन लिए होंगे और मेरी भी एकाध कहानियाँ तो आपने सुन ही ली हैं। एकाध कहानी तो सुनी, पर इन कहानियों से कुछ भला होने वाला नहीं है। भला उससे होने वाला है, जो तथ्यपूर्ण बात है और जो आपके गले उतर जाए। आपके व्यवहार में उतर आए।

हम किसलिए आपका समय लगाएँ? किसी-न-किसी कार्य में आपको लगाना ही पड़ता है; क्योंकि आप सुनते नहीं हैं। कुछ इधर कान लगाए हैं, कुछ उधर कान लगाए हैं। खाली बैठने से तो कुछ करना अच्छा है। जिससे आप समय बरबाद न करें।

हम यही कहेंगे कि अगर आपके गले उतर जाए, तो पाँच मिनट में ही कार्य समाप्त कर दें और गले न उतरे, तो हम आपके पीछे डेढ़ घंटे पड़े रहें, तो भी कम।

डेढ़ घंटे ही क्यों पड़े रहें? बेटे! अब तो हमने यह कहना शुरू कर दिया है कि या तो आप राजी से काबू में आ जाओ, तो ठीक है। यदि राजी से काबू में नहीं आते हो, तो आप गैर राजी से काबू में आओगे। गैर राजी जानते हैं, कैसी होती है? आप सबको मालूम ही होगा।

आप जब बच्चे थे और बात नहीं मानते थे, तो माँ क्या करती थी, जरा बताना? एक इधर-से और एक उधर-से चपत लगाती थी। यही करती थी न? खैर आप अब दाढ़ी-मूँछ वाले हो गए हो, तो हमें वैसा कुछ नहीं करना है। हमारी बात अलग है। हम नहीं रहेंगे, तो फिर क्या करेंगे? फिर बनेंगे बेटे भूत।

बेटे! अभी तो हमारी आवाज सुनने के लिए बड़े लालायित होते हो। अरे साहब! हम तो धन्य हो गए, आज माताजी आ गईं, तो आज का दिन बहुत अच्छा रहा। फिर माताजी-गुरुजी को देखकर के भागोगे। अरे साहब! घर में भूत आ गए भागो-भागो। फिर जिधर जाएँगे, बस उधर ही गुरुजी-माताजी दिखाई पड़ेंगे। बेटे! जिधर करवट लेगा, उधर को ही दिखेंगे। दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे चारों तरफ दिखेंगे। क्यों साहब! फिर तो हमें गंगा नहाना पड़ेगा? चाहे आप गंगा नहाना और चाहे जितने दान-पुण्य करना, हम तो काबू में आने वाले हैं नहीं।

फार्म—4

(1) प्रकाशन स्थान	**मथुरा**
(2) प्रकाशन अवधि	**मासिक**
(3) मुद्रक का नाम	**मृत्युंजय शर्मा**
क्या भारत का नागरिक है	**हाँ**
पता	**जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा**
(4) प्रकाशक का नाम	**मृत्युंजय शर्मा**
(5) संपादक का नाम	**डॉ० प्रणव पंड्या**
क्या भारत का नागरिक है	**हाँ**
पता	**शांतिकुंज, हरिद्वार**
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	**मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंह पुरा, मथुरा (उ. प्र.)**

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं। —*मृत्युंजय शर्मा*

हम तो पक्के हैं। पक्के हैं, तो हमारे ऊपर न गंगा जी का असर होता है और न बेटा! कुछ और का असर होता है। हमारी दुनिया का ही हमारे ऊपर असर होता है और कुछ असर नहीं होता। अपने विचार ही असर करते हैं तो फिर आपको डराया-धमकाया जाएगा। इसलिए आप होशियार हो जाओ और पहले से ही अपनी मन:स्थिति बनाओ कि आपको किधर जाना है?

बेटे! इधर जाना है या उधर जाना है? जहाँ तक मैं समझती हूँ, आपको उधर नहीं जाना है। आपको इधर ही आना है। इधर का रास्ता साफ है, आप इसी पर चलिए। नहीं साहब! हमारी तो पत्नी नहीं मानती है, हमारी तो फलानी नहीं मानती। बेटे! ये सारे-के-सारे बहाने तो अपना संकीर्ण मन कहता है। किसी-को-किसी ने कभी भी नहीं रोका है और न कोई रोक सकता है। मैं कहती हूँ कि आपकी पत्नी संत तुकाराम की पत्नी जैसी तो नहीं है।

संत तुकाराम की कहानी तो मैं नहीं कह रही हूँ, पर एक बात बताती हूँ। संत तुकाराम और उनकी पत्नी, दोनों में पटरी नहीं खाती थी; लेकिन वे निभाते हुए चले गए। आपको मालूम है संत तुकाराम जब एक ही गन्ना लेकर आए, तो उसने उनकी पीठ पर गन्ना दे मारा था। दो टुकड़े उसी ने कर दिए, तो संत ने कहा—"एक तुम खा लो और एक मैं खा लूँ।"

बस, दोनों में सुलहनामा हो गया। कहने का मतलब है कि आपकी पत्नी तो ऐसी नहीं है। उसको साथ लेकर के चलिए। आप जब उसको साथ लेकर के चलेंगे, तो वह आपकी आलोचना नहीं करेगी। वह आपकी आलोचना तब करती है, जब आप बच्चों को देखते नहीं हैं। मुँह उठाए घूम रहे हैं। उसको कैसे विश्वास आए कि आप अच्छे कार्य के लिए घूम रहे हैं या किसके लिए घूम रहे हैं?

मेरे गुरु—मेरे भगवान

बेटे! उसे बताइए तो और उसे यह भी बताइए कि गुरुजी ने इतना बड़ा जो कार्य किया है, उसमें माताजी ने कभी कोई रोड़ा नहीं अटकाया; बल्कि उनके कार्यों में हमेशा सहायक होती हुई चली गईं। सारी गृहस्थी से लेकर के और सभी बाहर से आने-जाने वालों की सारी-की-सारी व्यवस्था हमने की है। इस तरीके से आप सहयोगी बनिए और उनको भी सहयोगी बनाइए; ताकि उसका भी लाभ समाज और राष्ट्र उठा सके।

भगवान की भक्ति यदि सार्थक है, तो वह समाजसेवा में ही निहित है। इसलिए आपको भी समाजसेवा करनी चाहिए। जितने भी संतों ने, ऋषियों ने और भक्तों ने अग्रणी कार्य किए हैं। हनुमान जी ने भी अग्रणी काम किया। ये जो मैं अभी आपको उदाहरण दे रही हूँ। इन सभी ने वही कार्य किए, जो समय की पुकार थी। हनुमान जी ने भगवान राम का काम किया था। अब आप को भी राम का काम करना है। भगवान शब्द मैंने हटा दिया है; ताकि आप लोगों के मन में यह न आए कि माताजी इतना बड़ा भगवान शब्द कह रही हैं। मेरे लिए तो बेटा भगवान ही हैं। आपको तो मुझे मालूम नहीं कि आपके लिए भगवान हैं कि नहीं? पर मेरे लिए तो जरूर हैं।

बेटे! मैंने अभी तक तो भगवान कहीं देखा ही नहीं। उपासना जरूर करते हैं; लेकिन कभी नहीं देखा। मुझसे गायत्री माता कभी बात करने नहीं आईं, जो सुविधाएँ और जो साधन अर्जित किए हैं, जो भी है, वह एक आत्मिक बंधन है। इसलिए मेरे लिए तो भगवान हैं। अब मैं नहीं समझती कि आपके लिए भगवान हैं कि नहीं? पर मेरे लिए तो वे भगवान ही हैं। देखो, मुझे उन्होंने अपने समतुल्य

बना दिया। आप उनकी वही छवि मेरे अंदर देख सकते हैं और मेरी छवि गुरुजी के हृदय में देख सकते हैं। हम दोनों की छवि आप एकदूसरे में देख सकते हैं। क्यों?

हमारा समर्पण है न इसलिए। आपने उनको हृदय से स्वीकार नहीं किया है। जब हृदय से स्वीकार करेंगे, तो आप भी इसी तरीके से बन सकते हैं, जिस तरीके से आज मैं आपको दिखाई पड़ रही हूँ। बिलकुल ऐसे ही आप भी दिखाई पड़ेंगे। अब आप ऐसे ही बनने की कोशिश करना। आप जरा अपने दृष्टिकोण को तो बदलना। अभी आपका दृष्टिकोण नहीं बदला है।

जिस दिन दृष्टिकोण बदल जाएगा, उसी दिन आपको बदलने में देरी नहीं लगेगी। आप स्वत: ही बदलते हुए चले जाएँगे। सारा समाज एक तरफ और आप एक तरफ। जिस तरीके से समुद्र में मछली जाती है और छरछराती हुई अपना रास्ता बनाती चली जाती है। कौन किसका रास्ता बनाता है? रास्ता तो स्वयं ही बनाना पड़ता है। सही राह पर जा रहे हैं, गलत राह पर जा रहे हैं, यह निर्धारण तो आपको ही करना पड़ेगा।

सही रास्ते पर चलें

परिवारवाले आपका साथ देंगे? नहीं देंगे। आप नीतिपूर्वक धन कमा रहे हैं या अनीति से कमा रहे हैं। क्या कर रहे हैं, क्या नहीं? उन्हें क्या मतलब? उन्हें तो केवल अपनी उदरपूर्ति से मतलब है। उनको जो सुविधाएँ-साधन मिलने चाहिए, उससे मतलब है। आपसे उन्हें क्या मतलब कि आप क्या कर रहे हैं? आप अच्छे रास्ते पर जा रहे हैं या गलत रास्ते पर। उनकी बला से, किसी पर भी जाओ। निर्धारण आपको करना चाहिए कि कौन-सा रास्ता सही है और कौन-सा रास्ता गलत है, किस रास्ते पर हमको चलना है? सही रास्ता तो यही है, जैसा कि मैंने अभी आपसे निवेदन किया है।

बेटे! और कोई रास्ता होता, तो हम जरूर बता देते। फिर अस्सी साल की उम्र तक तिल-तिल गलने की क्या आवश्यकता थी, जरा बताना। क्यों घर छोड़ने की आवश्यकता थी? क्यों बच्चे छोड़ने की आवश्यकता थी? क्यों जिस दिन से आए, तो उधर मुँह करके भी नहीं देखा? आखिर क्यों आवश्यकता थी? कोई आवश्यकता नहीं थी। जैसे आप अपने घर-गृहस्थी में लिप्त हैं। ऐसे वे भी रहते, पर ठुकरा दिया और ठुकरा करके यह दिखाया है कि यह समाज बहुत महत्त्वपूर्ण है। आपको एक महायज्ञ करना है। महायज्ञ कैसा? अभी तो आप कह रही थीं कि दीपयज्ञ बंद करने हैं, फिर महायज्ञ कैसा करना है? बेटे! महायज्ञ का समय आ गया है और अभी से आपको उस महायज्ञ के लिए पूर्णतया तैयार होना है।

बेटे! मैंने अभी कहा न कि शरीर, मन और अर्थ इन तीनों से ही आपको संपन्न होना है और तीनों को ही उस महायज्ञ की पूर्णाहुति में समर्पित

शिष्य के ज्ञान के लक्षण पूछने पर स्वामी रामकृष्ण ने उत्तर दिया—''ज्ञान के दो लक्षण होते हैं।

''पहला यह कि ज्ञानी व्यक्ति कूटस्थ बुद्धि हो, माने लाख दुःख-कष्ट और विपत्तियाँ हों—सबमें निर्विकार रहे और दूसरा यह कि वह पुरुषकार हो—पूरी जिद, काम और क्रोध से अपना अनिष्ट होते देखे तो भी उसमें पूर्ण त्याग करने की क्षमता और सामर्थ्य हो। यही ज्ञान के लक्षण हैं।''

करना है। इसका मतलब आप यह मत समझना, यह विचार मत करना कि धन समर्पित कर देंगे, तो हम क्या खाएँगे? नहीं बेटा! हमारा यह मतलब नहीं है, पर आपकी भावनाएँ तो होनी चाहिए। आपकी श्रद्धा तो उसमें जुड़ी होनी चाहिए। हम खाएँगे-ही-खाएँगे, किसी को कुछ खिलाएँगे नहीं।

गिलहरी जैसा प्रयास तो करें

यज्ञ भगवान को खिलाइए, शांतिकुंज को खिलाइए, हाँ बेटा! खिलाना तो पड़ेगा ही। इतना बड़ा बनाया काहे के लिए, खिलाओगे नहीं, तो और क्या करोगे? आपको सेवा-सहायता करनी चाहिए। चाहे भले ही आपका सहयोग गिलहरी के समान ही क्यों न हो, पर उसके अंदर भावनाएँ होनी चाहिए। एक कहानी कई बार पहले भी मैंने बताई है कि गांधी जी एक बार उड़ीसा गए। वहाँ कोई सम्मेलन था। वे जहाँ भी जाते कुछ-न-कुछ माँग करके लाते थे; क्योंकि राष्ट्र के लिए उन्हें कुछ चाहिए ही था।

वहाँ एक बच्चा अपनी माँ से बोला—"माँ, इन्हें हम क्या दे सकते हैं? हमारे पास तो कुछ भी नहीं है।" माँ ने कहा—"हाँ बेटा! हमारे यहाँ कुछ है तो नहीं।" वह बोला—"हम इस संत को क्या दे सकते हैं?" उसकी माँ बोली—"बेटा! यह मत कहना कि घर में कुछ नहीं है। मेरे पास अभी कुछ है।" घर में एक काशीफल रखा था। उसने काशीफल गांधी जी की झोली में डाल दिया। गांधी जी ने कहा—"आज मुझे सबसे बड़ा दान मिल गया है, आज मैं किसी और से दान नहीं लूँगा। वह दान, जो उसकी भावनाओं और आस्थाओं से ताल्लुक रखता है। वह मुझे मिल गया है। आज मैं दूसरा दान नहीं लूँगा।"

बेटे! गिलहरी जैसा प्रयास क्यों न हो? पर हो तो सही। लोक-मंगल की राह पर चलने के लिए हो सके, तो आप यह साहस अवश्य दिखाना। हम चाहेंगे कि आप में से ही वे व्यक्ति आगे आएँ, जो कि मिशन के कार्यों के लिए आगे बढ़-चढ़कर कुछ करने की हिम्मत करें। आप यहाँ समयदान दें। जहाँ आपकी प्रतिभा की उपयोगिता होगी, वहाँ हम आपका उपयोग करेंगे।

अगर आवश्यकता हुई, तो वहाँ आपके क्षेत्र में उपयोग करेंगे। आपको इस लायक बनाएँगे; ताकि आप कुछ बन करके समाज की सेवा कर सकें। आपको ढालना है, आप अभी अनगढ़ हैं। इन अनगढ़ों को हमें गढ़ना पड़ेगा। इसकी बहुत आवश्यकता है। हमको इनके अंदर बहुत-सी खूबसूरतियाँ लानी हैं। अभी हमको इनकी बहुत कुछ कटाई-छँटाई करनी है।

समय-समय पर आप नौ दिवसीय सत्रों में, एक महीने के प्रशिक्षण में आप आइए। आपकी पत्नी भी आए, पढ़े-लिखे अपनी योग्यता बढ़ाए। बेटे! वजन बढ़ाने वाले लोग हमको नहीं चाहिए, जो केवल सोते रहें, खाते रहें, गंदगी करें और यहाँ-वहाँ घूमते रहें। वे भी नहीं चाहिए, जो जरा-जीर्ण अवस्था में हैं, जिनके सिर, हाथ-पैर काँप रहे हैं, ऐसों के लिए हमें यहीं कफन-काठी की तैयारी करनी पड़ेगी। ये हमें नहीं चाहिए।

बेटे! हमको चाहिए जो जीवंत, प्रतिभाशाली, प्रतिभासंपन्न व्यक्ति हैं, वे ही कुछ कार्य कर सकते हैं। जो भावनाशील हैं, वे ही समाज को कुछ योगदान दे सकते हैं। जिसके अंदर से श्रद्धा ही गायब हो गई, वह क्या करेगा? वह तो मशीन है। एक-दो रोज तक अपनी कला दिखाएगा, फिर उसकी पोल खुल जाएगी कि वह व्यक्ति कुछ नहीं करता। किसी काम का नहीं है, यह बेकार समय गँवाने वाला है।

दृष्टिकोण का परिवर्तन करें

ऐसा व्यक्ति हमको नहीं चाहिए। आप में से बहुतों की हमें इतनी जरूरत है, बेटे कि हम क्या कहें ? कोई कहता है कि हमारे इतने सारे बच्चे हो गए ? हम थकते नहीं हैं, अभी हमें बहुत बच्चे पैदा करने हैं। आप लोग आइए, कुछ बनिए और आपके द्वारा दूसरे लोग भी बनते हुए चले जाएँ। आपको अपने दृष्टिकोण को बदलना है, दृष्टिकोण का परिवर्तन करना है।

एक छोटी-सी कहावत है, जिसमें कहा है—"किश्ती ने मोड़ा रुख तो किनारे बदल गए।" यदि दृष्टिकोण को बदल दिया जाए, तो व्यक्ति कुछ-से-कुछ हो जाता है। इतनी स्फूर्ति, साहस और हिम्मत उसके अंदर आ जाती है कि वह दूसरों से हजार गुना कर्मठ मालूम पड़ता है। ऐसा लगता है कि बस, अब तो यह न जाने क्या करेगा ? किधर को जाएगा ? जिधर को जाएगा, उधर ही सफल होता चला जाएगा।

मानसिक विकृतियाँ दूर करें

बेटे ! मैं थोड़ा-सा कहकर अपनी बात समाप्त करूँगी। आपको इस दौड़ में आगे-आगे दौड़ना है। महिलाओं को भी दौड़ना है। आप साप्ताहिक सत्संग करिए, सत्संगों के द्वारा अपनी बात कहिए; ताकि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व ऊँचा उठता हुआ चला जाए। इसमें नर भी शामिल हों, नारी और बच्चे भी शामिल हों। दहेज से लेकर के अन्य विकृतियाँ, जो समाज में कोढ़ के तरीके से फैली हुई हैं। उस कोढ़ को किसी-न-किसी तरीके से मिटाना है।

जहाँ कहीं भी आपको ऐसा जान पड़ता हो कि ये हमारे सगे-संबंधी हैं, उनके यहाँ मत जाइए। हमारे संबंधी हैं, पर ऐसे आदमी जो माँगते हैं, उनके यहाँ हम क्यों जाएँगे ? हम भिखारी हैं क्या ? भिखारियों का हम नहीं खाएँगे। भिखारियों का खाएँगे, तो हमारे ऊपर भी वही असर पड़ेगा, जो उनमें है। हम भिखारी नहीं हैं। हम देने वालों में से हैं, लेने वालों में से नहीं हैं।

यह विचारधारा प्रत्येक जगह फैलानी चाहिए। समाज के मध्यम वर्ग से लेकर विशेष वर्ग तक जहाँ कहीं भी बुराइयाँ हैं, उन्हें हटाना-मिटाना है। सत्प्रवृत्तियों के लिए आप जा रहे हैं, तो झोला पुस्तकालय आपको चलाना ही है। यह संकल्प, तो आप लेकर के जाएँगे ही, साथ में जो सामाजिक कुरीतियाँ हैं, उनको हटाने के लिए भी आपके मन में बात आनी चाहिए।

बेटे ! आज विदाई के वक्त आपको भी लगेगा कि हम बिछड़ करके जा रहे हैं और हमें भी लगेगा कि बच्चे हमारे पास नौ दिन रहे और आज आँख से ओझल हो रहे हैं। यह मानकर चलना बेटे कि विदाई शरीरों की जरूर है, पर मन की विदाई नहीं है। शरीर को आपके कर्मक्षेत्र के लिए हमने ललकारा है, आह्वान किया है, तो शरीर को तो कर्मक्षेत्र में जाना ही है। माँ के पास कौन-कौन-सा बच्चा बैठ सकता है ? उनको तो बाहर जाना ही पड़ेगा और जाना ही चाहिए।

आपके दु:ख, कष्ट और कठिनाइयों के बारे में हमने भले ही आप से पूछा नहीं है। आपसे लिखवाकर जरूर लिया है। आपने कहा है या नहीं कहा है ? हम आपसे पूछते भी रहे हैं। हम आपको आश्वासन दिलाते हैं कि जिस तरीके से एक वफादार गुरु, वफादार माता-पिता अपनी जान की बाजी लगा करके भी बच्चों को ऊँचा उठाते हैं, उसको हिम्मत दिलाते हैं। आपकी परिस्थितियाँ, हमारी परिस्थितियाँ हैं। यह मत समझना कि आपको कोई दु:ख, कष्ट है, तो हमारे ऊपर असर नहीं पड़ेगा। ऐसा कैसे हो सकता है ?

बेटे ! हम उस कबूतर-कबूतरी के तरीके से तो नहीं हैं। एक कबूतर और एक कबूतरी थे। एक दिन एक बहेलिया भूखा-प्यासा और पेड़ के नीचे

लेट गया। कबूतरी और कबूतर, दोनों विचार करने लगे कि यह अतिथि आज हमारे दरवाजे पर आया है। क्या यह भूखा ही चला जाएगा? उन्होंने कहा नहीं, जो अतिथि हमारे यहाँ आया है, वह भूखा क्यों जाना चाहिए? तो क्या करें? उन्हें एक युक्ति समझ में आई।

एक कहीं से जलती तीली लाया, एक ने घास-फूँस इकट्ठा किया और उसको जलाया। फिर दोनों उसमें भस्म हो गए। बहेलिया उठा, तो उसने अपने भाग्य को सराहा और यह कहा कि भगवान, आज तूने मेरी भूख मिटा दी। मैं कितने दिन का भूखा था।

बेटे! हम उस कबूतर-कबूतरी के तरीके से तो नहीं हैं कि भस्म हों और न ही आप बहेलिया हैं, पर हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जब तक हम जिंदा हैं और नहीं भी रहेंगे जिंदा, तो हमारी जीवात्मा तो रहेगी।

हम इसी तरीके से छाए रहेंगे, जिस तरीके से हमसे इस समय आपको प्यार, दुलार, स्नेह, प्रेरणा और मदद मिलती रहती है—वह जन्म-जन्मांतरों तक मिलती ही रहेगी। बस, इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात खतम करती हूँ।

॥ ॐ शांतिः ॥

महात्मा गांधी से उनके साथ कार्यरत एक स्वयंसेवक ने पूछा—"आप अँगरेजों से इतनी निर्भीकता से लोहा ले लेते हैं, क्या आपको कभी भय नहीं लगता? क्या कभी आपको ऐसा नहीं लगता कि जिस मार्ग पर आप चल रहे हैं, वह गलत भी हो सकता है और संभवतया भारत को कभी आजादी नहीं ही मिले?"

महात्मा गांधी बोले—"मित्र! मुझे आनंदित जीवन का रास्ता मालूम है। वह तंग जरूर है, परंतु सीधा है। वह खाँड़े की धार के समान है, परंतु उस पर चलने में मुझे आनंद आता है। यदि कभी उस पर चलते हुए मैं फिसल भी जाता हूँ तो मैं हृदय से भगवान को पुकारता हूँ। भगवान का वचन है कि कल्याण-पथ पर चलने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। धर्म का पथ लेने वाले की रक्षा स्वयं भगवान करते हैं। भगवान के इस आश्वासन पर मेरी अटूट श्रद्धा है। इस श्रद्धा को मैं किसी कीमत पर गँवाऊँगा नहीं।"

उस स्वयंसेवक ने पुनः पूछा—"यदि इस पथ पर चलते-चलते आप अपना जीवन गँवा बैठे, तो?" गांधी जी बोले—"मित्र! इस संसार में अमरता लिखाकर के तो कोई आया नहीं है, पर यदि सन्मार्ग पर चलते हुए सदुद्देश्य के लिए यह शरीर नष्ट भी हो जाए तो उसकी मुझे परवाह नहीं। जीवन सही कार्यों में गया तो मेरी अंतरात्मा इसी से संतुष्ट रहेगी।"

गणमान्य अतिथियों के आगमन से गौरवान्वित हुआ विश्वविद्यालय

पूज्यवर के दिव्य स्वप्न का यथार्थ परिणाम देव संस्कृति विश्वविद्यालय आज अंतरराष्ट्रीय फलक पर विराजमान हो सभी के मध्य अपनी विशिष्टता का परिचय दे रहा है। यही कारण है कि सरकारी अथवा गैर-सरकारी प्रायः सभी संस्थाएँ अपने द्वारा चलाई जा रही विभिन्न गतिविधियों में देव संस्कृति विश्वविद्यालय को सम्मिलित करने में अत्यंत गौरव का अनुभव करती हैं।

इसी क्रम में भारत के प्रख्यात आध्यात्मिक गुरु श्रीअरविंद की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में भारत सरकार के द्वारा एक 'ऑनलाइन वीडियो कॉन्फ्रेन्सिंग' कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में देश के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय प्रतिकुलपति, माननीय संस्कृति मंत्री श्री जी० किशन रेड्डी एवं अन्य गणमान्य मंत्रियों एवं अतिथियों ने हिस्सा लिया। कार्यक्रम का समापन श्रीअरविंद की विचारधाराओं से भारत को एकजुट करने की प्रेरणा देते हुए एवं एक नए डाक टिकट को जारी कर किया गया।

अनुसंधान-केंद्रों को विस्तारित करने के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में याज्ञवल्क्य यज्ञ अनुसंधान-केंद्र नवनिर्माण के लिए भूमिपूजन का कार्य माननीय प्रतिकुलपति एवं शांतिकुंज व्यवस्थापक आदरणीय महेंद्र शर्मा जी के द्वारा किया गया। इस अवसर पर संबंधित सभी आचार्यगण उपस्थित रहे। इस अनुसंधान-केंद्र के माध्यम से गुरुदेव के विचार, वैज्ञानिक अध्यात्मवाद को गति प्रदान की जाएगी तथा यज्ञीय शोध में अनेक कार्य किए जाएँगे।

उपलब्धियों के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय व शांतिकुंज के छात्र-छात्राओं ने जिलास्तरीय युवा महोत्सव में हिस्सा लिया। यह कार्यक्रम जिला युवा कल्याण एवं प्रांतीय रक्षक दल अधिकारी, हरिद्वार द्वारा प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाता है। वर्ष 2022 में भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने युवा महोत्सव में प्रतिभाग किया था, जिसमें वे विजेता घोषित किए गए।

इस वर्ष विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने लोकगीत (गढ़वाली) में प्रथम स्थान, लोकनृत्य (गढ़वाली) में द्वितीय स्थान, एकांकी नाटक में द्वितीय स्थान, शास्त्रीय गायन एकल में प्रथम एवं द्वितीय स्थान एवं शास्त्रीय वादन तबला में प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस अवसर पर प्रतिभाग किए सभी विद्यार्थियों का माननीय प्रतिकुलपति ने उत्साहवर्द्धन किया।

विश्वविद्यालय परिसर में विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में छत्तीसगढ़ राज्य के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री माननीय श्री कवासी लखमा जी का आगमन हुआ। अपने आगमन पर माननीय मंत्री जी ने माननीय प्रतिकुलपति से भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान उन्होंने अखिल विश्व गायत्री

परिवार द्वारा चलाई जा रही विश्वकल्याणकारी योजनाओं को जाना एवं समझा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में उत्तराखंड के माननीय उच्च शिक्षामंत्री डॉ० धन सिंह रावत जी का भी आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति से भेंटकर विविध विषयों पर चर्चा की।

भेंटवार्त्ता के दौरान उत्तराखंड में शिक्षा जगत् के विकास को लेकर विचार-विमर्श किया गया। साथ ही इस अवसर स्नेह भेंट के रूप में पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी का चित्र भी उन्हें भेंट किया गया।

विगत दिनों विश्वविद्यालय परिसर में श्री मनु गौड़ जी, अध्यक्ष, टैक्सपेयर्स असोसिएशन ऑफ इंडिया का आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति से भेंट की एवं विविध विषयों पर चर्चा भी की। चर्चा के दौरान उन्होंने विश्वविद्यालय में चल रही गतिविधियों की सराहना की।

इसी के साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में जर्मनी से डॉ० मार्कस श्मीके, संस्थापक, एक्सिटेन्शियल कॉन्शियसनेस शोध संस्थान का भी आगमन हुआ। आगमन पर उन्होंने माननीय प्रतिकुलपति से शिष्टाचार भेंट की व जिसके उपरांत उन्होंने विश्वविद्यालय में प्राण के संदर्भ में एक कार्यशाला का आयोजन कर अपने विचार साझा किए और विद्यार्थियों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में विश्व हिंदू परिषद् के अंतरराष्ट्रीय महामंत्री माननीय श्री मिलिंद पांडेय जी, माननीय केंद्रीय मंत्री श्री अशोक तिवारी जी एवं माननीय श्री सुधांशु मोहन पटनायक जी एवं माननीय प्रांत संगठन मंत्री श्री अजय जी का आगमन हुआ। सभी अतिथियों ने माननीय प्रतिकुलपति से शिष्टाचार भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा हुई। इसके उपरांत उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण कर कई गतिविधियों को करीब से देखा और सराहना की। ❑

मानसून का समय आया तो साल भर से सूखी नदी उफान के साथ बहने लगी। गर्व से उन्मत्त होकर वह समीप बसे गाँव के कुएँ से बोली—"कुएँ भाई! जरा मेरी चौड़ाई तो देखो। मैं एक नहीं दसियों गाँवों को अपने अंदर समा सकती हूँ। तुम तो सहज ही मेरे अंदर समा जाओगे।" कुएँ ने नदी की बात का कोई प्रतिकार नहीं किया।

मौसम बदला तो बरसाती नदी सूखकर पतली-सी धारा में बदल गई। कुआँ उसे संबोधित करते हुए बोला—"बहन! जीवन में मात्र विस्तार ही सब कुछ नहीं होता। गुणवत्ता भी आवश्यक है। बिना उद्देश्य के बहुत बढ़ जाने से भी कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाता। जीवन में सफलता तो व्यक्तित्व में गहराई लाने से ही प्राप्त होती है।"

ज्योति बुझेगी नहीं, वरन और प्रचंड होगी

''शरीर का अंत तो सभी का होता है, पर हम लोग वर्तमान वस्त्रों को उतार देने के उपरांत भी अपनी सत्ता में यथावत् बने रहेंगे और जो कार्य सौंपा गया है, उसे तब तक पूरा करने में लगे रहेंगे, जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। युग-परिवर्तन एक लक्ष्य है, जनमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन उसके दो कार्यक्रम। अगली शताब्दी इक्कीसवीं सदी अपने गर्भ में उन महती संभावनाओं को सँजोए हुए है, जिनके आधार पर मानवीय गरिमा को पुनर्जीवित करने की बात सोची जा सकती है। दूसरे शब्दों में इसे वर्तमान विभीषिकाओं का आत्यंतिक समापन कर देने वाला सार्वभौम कायाकल्प भी कह सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए दोनों की साधना स्वयंभू मनु और शतरूपा जैसी, वसिष्ठ-अरुंधती स्तर की चलती रही है और यथावत् चलती रहेगी।''

—'ज्योति फिर भी बुझेगी नहीं' अखण्ड ज्योति, जनवरी-1988

परमपूज्य गुरुदेव की लेखनी से जब ये शब्द आज से 35 वर्ष पूर्व प्रवाहित हुए थे तो वो समय उनके द्वारा प्रारंभ किए गए, प्रज्वलित एवं प्रतिष्ठित किए गए युग निर्माण योजना, विचारक्रांति-अभियान की यात्रा के चुनौतीपूर्ण समयों में से एक था। पूज्य गुरुदेव शनैः-शनैः अपनी लौकिक यात्रा को समेटते प्रतीत हो रहे थे और गायत्री परिवार के भविष्य को लेकर कतिपय के मन में असमंजस और ऊहापोह की स्थिति भी थी।

ऐसे सभी अपनों, हितचिंतकों से लेकर, दिग्भ्रांतों के प्रश्नों का समाधान करते हुए पूज्य गुरुदेव ने इस लेख में आगे लिखा कि 'शरीर परिवर्तन की वेला आते ही यों तो हमें साकार से निराकार होना पड़ेगा, पर क्षण भर में उस स्थिति से अपने को उबार लेंगे और दृश्यमान प्रतीक के रूप में उसी अखंड दीपक की ज्वलंत ज्योति में समा जाएँगे, जिसके आधार पर अखण्ड ज्योति नाम से संबोधन अपनाया गया है। शरीरों के निष्प्राण होने के उपरांत जो चर्मचक्षुओं से हमें देखना चाहेंगे, वे इसी अखंड ज्योति की जलती लौ में हमें देख सकेंगे।'

समझ सकने वालों के लिए पूज्य गुरुवर का इतना संकेत पर्याप्त है कि अखंड दीपक की अखंड ज्योति, उनकी दैवी चेतना की, ईश्वरीय प्रवाह की उपस्थिति का प्रमाण है। उसे हम इस धरती पर उनकी आध्यात्मिक चेतना का घनीभूत अंश भी मान सकते हैं।

वातावरण की विषाक्तता से त्रस्त एवं संतप्त इस वसुधा पर उस अखंड दीपक की प्रज्वलित लौ देवशक्तियों एवं ऋषिसत्ताओं के पावन आश्वासन का प्रत्यक्ष प्रमाण कही जा सकती है एवं यह मात्र गायत्री परिवार ही नहीं, वरन समस्त मानवता के लिए अलौकिक सौभाग्य का विषय है कि सन् 2026 में पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रज्वलित उस दिव्य अखंड दीपक की शताब्दी को हम मनाने जा रहे हैं।

परमपूज्य गुरुदेव को 15 वर्ष की आयु में वसंत पर्व की प्रात:कालीन उपासना के समय प्रकाश-पुंज के रूप में जब उनकी अलौकिक मार्गदर्शक सत्ता के दर्शन हुए तो उन्होंने उन्हें अखंड घृतदीप की स्थापना, गायत्री महाशक्ति के चौबीस वर्ष में चौबीस महापुरश्चरण एवं चौबीस वर्ष में तथा उसके बाद समय-समय पर क्रमबद्ध मार्गदर्शन के लिए हिमालय यात्रा का निर्देश प्रदान किया था।

दूसरे लोग गुरुओं की तलाश करते हैं, पर पूज्य गुरुदेव जैसे सुयोग्य, सुपात्र को ढूँढ़ते हुए उनके गुरु ही उनके पास पहुँचे थे। संकल्प, धैर्य एवं श्रद्धा के त्रिविध सुयोगों को लेकर चली उनकी तपयात्रा कालांतर में युग निर्माण योजना के अविस्मरणीय विस्तार का प्रतीक बन गई।

जो यात्रा आँवलखेड़ा की पूजा-कोठरी में प्रज्वलित दीपक से प्रारंभ हुई थी, वो देखते-देखते विशालकाय आध्यात्मिक आंदोलन में परिवर्तित हो गई। बीज देखते-देखते विशाल वृक्ष में बदल गया। इतना सब तो पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी की लौकिक उपस्थिति से ही संभव हो गया, पर पूज्य गुरुदेव की योजना की परिधि में अकेला भारत नहीं, बल्कि समूचा विश्व आता है। इसलिए अब यह आवश्यकता सघन हो चली है कि अखंड दीपक के प्रकाश के दायरे को और विस्तृत किया जाए।

सन् 2026 में गुरुसत्ता के आध्यात्मिक प्रकाश की उपस्थिति के सौ वर्ष होने जा रहे हैं। यह सौभाग्यशाली समय हममें से प्रत्येक गायत्री परिजन के लिए एक ही पुकार लेकर उपस्थित हुआ है कि इस संक्रमण से भरी परिस्थितियों में अपना नाम युगसृजेताओं की पंक्ति में वे सबसे आगे लिखा सकें।

प्रथम पंक्ति में खड़े हो पाने का सौभाग्य हमें भी मिले, ऐसा प्रयास-पुरुषार्थ करने की पुकार लेकर वर्तमान समय हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है। कुछ लोग ऐसे समय में कुछ न करने का भी चयन करते हैं—हो सकता है कि कुछ क्षणों के लिए वे स्वयं को सुरक्षित अनुभव कर भी लेते हों, परंतु ऐसा करने पर वे अपनी गणना उन लोगों में कराने से चूक भी जाते हैं, जिनके द्वार पर सौभाग्य पहुँचा था, परंतु वे अपनी चटकनी लगाकर बिस्तरों में ही दुबके रह गए।

आज की परिस्थितियाँ एवं वर्तमान समय हमारे लिए एक आवाहन लेकर उपस्थित हुआ है और वो यह कि हम वंदनीया माताजी के, जिनकी शताब्दी भी अखंड दीपक की शताब्दी के साथ ही उपस्थित हो रही है, उनके प्रकाश को हर घर तक पहुँचा सकें।

जब पूज्य गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति को लिखना आरंभ किया था तो अनेक गणमान्यों ने उनका उत्साह बढ़ाने के बजाय उनकी निंदा-उपहास करने का कार्य किया। उनमें से किसी को प्रत्युत्तर देने के स्थान पर पूज्य गुरुदेव ने इसी पत्रिका में उस समय लिखा कि इनसान की जलाई हुई अगर यह ज्योति हो तो यह बुझ जाए और यदि यह ईश्वर की जलाई हुई होगी तो अहर्निश जलेगी, अखंड जलेगी।

सत्य यही है। उनकी जलाई हुई ज्योति न केवल जलती रहेगी, बल्कि और प्रचंड होगी। पूज्य गुरुदेव ने सन् 1988 के जनवरी के आलेख में लिखा भी था कि 'हमारी ज्योति और फैलेगी। मिशन तीर की तरह सनसनाता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेगा। हम लोगों की स्थिति प्रत्यंचा की तरह अभी भी तनी है और भविष्य में भी वैसी ही बनी रहेगी।'

पूज्य गुरुदेव के उन शब्दों को हम लोग इस तरह से लें कि हम उनकी ज्योति को घर-घर तक पहुँचा दें। अखंड दीपक से एक ज्योतिपुंज लेकर एक बड़ी मशाल जलाई जाए और उस मशाल की ज्योति से अनेकों ज्योतियाँ जलें और ज्योति-से-ज्योति जलाते हुए हम विश्व के कोने-कोने तक उसे ले जाएँ।

भावना ऐसी उमड़ी है कि सन् 2025 की वसंत पंचमी को अखंड दीपक के प्रकाश-स्रोत से एक वृहद् लाल मशाल प्रज्वलित की जाए, जिसकी ज्योति से अपनी मशाल को जलाने के लिए भारत के विभिन्न प्रज्ञा संस्थानों से, दिए गए समयानुसार कार्यकर्त्ताओं का दल शांतिकुंज पहुँचे। जिस तरह से यज्ञीय आयोजन के लिए शक्तिकलशों को ले जाने का कार्यक्रम संपन्न होता रहा है, कुछ वैसे ही तरीके से हरिद्वार से कार्यकर्त्ता ज्योतिकलश लेकर अपने क्षेत्रों को पहुँचें।

जब वो ज्योति-यात्रा यहाँ से निकले तो मार्ग में पड़ने वाले हर केंद्र को जगाती हुई, जोड़ती हुई निकले। मार्ग में पड़ने वाले प्रज्ञा संस्थान ही नहीं, हर देवालय तक उस ज्योति का अंश पहुँचे। पदयात्राओं के पथ शांतिकुंज कार्यक्रम विभाग द्वारा तैयार किए जा रहे हैं।

उन पथों को कुछ इस तरह से तैयार किया जा रहा है, जिससे हर संस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ, गायत्री चेतना केंद्र तक वो यात्रा पहुँच सके। जैसे सृजनसंकल्प विभूति महायज्ञ के समय आँवलखेड़ा जन्मभूमि की रज घर-घर तक पहुँची थी, वैसे ही इस बार अखंड दीपक की ज्योति का प्रकाश हर घर तक पहुँचाने का संकल्प उभरा है।

उद्देश्य एक ही है कि '**ज्योति-से-ज्योति जलाएँ; देश को जगाएँ, दुनिया को जगमगाएँ।**' इस ज्योति-यात्रा का उद्देश्य मात्र ज्योति ले जाना नहीं; बल्कि मार्ग के हर व्यक्ति, हर केंद्र को प्रज्ञामय बनाना है। इन पद-यात्राओं में, वाहन-यात्राओं में भी सम्मिलित साधक अपने साथ झोला-चल पुस्तकालय लेकर निकलें, लोगों के घरों तक पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के विचार पहुँचाते हुए चलें। जहाँ रुकें, वहाँ वो दीपयज्ञ को, संस्कारों को, संकल्प धारण करने वाले आयोजनों को करते हुए चलें। मार्ग में पड़ने वाले पर्वों को मनाते हुए चलें। अंत में जब यह यात्रा अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचे तो ज्योति प्राकट्य का एक बड़ा पर्व वहाँ आयोजित हो। पहुँचने से पूर्व उस केंद्र को इस योग्य बना लेने के लिए कि वहाँ अखंड दीपक की प्रचंड अग्नि पहुँच सके—वहाँ के सभी परिजन न्यूनतम एकमासीय सामूहिक तप अनुष्ठान अवश्य संपन्न करें, ताकि ज्योति को धारण करते समय अपेक्षित योग्यता सुनिश्चित की जा सके।

पूज्य गुरुदेव ने हमारी वसीयत और विरासत में लिखा भी था कि 'वस्तुतः यह व्यक्ति समुदाय है, जिसे आज की स्थिति में प्रज्ञा परिवार जैसी छोटी इकाई समझा जा सकता है, किंतु अगले दिनों यह उदारचेताओं की एक महान विरादरी होगी। इस यशस्वी वर्ग में सम्मिलित होना, उनके दायित्वों में हाथ बँटाना उन बड़भागियों के लिए एक अलौकिक वरदान है, जो अपने हिस्से का काम करके उपयुक्त अनुदान प्राप्त कर सकते हैं।'

वे आगे लिखते हैं कि 'परिजन अब तक के सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों में साथ देते, हाथ बँटाते और कदम-से-कदम मिलाकर चलते रहे हैं। विश्वास किया गया है कि इस अग्निपरीक्षा की घड़ी में वे साथ नहीं छोड़ेंगे, मुँह नहीं मोड़ेंगे।' आइए! गुरुसत्ता के हमारे प्रति दिखाए गए विश्वास को सत्य कर दिखाएँ। उनकी चेतना के प्रत्यक्ष प्रमाण अखंड दीपक की शताब्दी को ऐतिहासिक बनाएँ। ❑

क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा।
न वीरमानिनी भूमौ दीनस्येव कृताञ्जलेः॥

अर्थात वीर क्षत्रिय के लिए रणभूमि में सदा लड़ते हुए मरना ही श्रेयस्कर है, भूमि पर पड़कर हाथ जोड़े हुए दीन की तरह मरना नहीं।

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

तुम पर बलि-बलि जाऊँ मैं

ऐसी दृष्टि दो पूज्य गुरुवर, स्नेह-सुधा बरसाऊँ मैं।
नया जमाना लाने के, संकल्पों में खप जाऊँ मैं॥
जीवन में निज के गुण-कर्म,
स्वभाव उदात्त बनाना है।
आत्मसुधार जगत्-शोधन का,
उत्तम ताना-बाना है।
सत्पथ पर निशिदिन चलने में, नहीं कभी अलसाऊँ मैं।
नया जमाना लाने के, संकल्पों में खप जाऊँ मैं॥
त्याग और पुरुषार्थ-परिश्रम,
का उत्साह बढ़ाना है।
आशा व आनंद भाव की,
मर्यादा को लाना है।
भूले-भटके हुए पथिक को, सच्ची राह बताऊँ मैं।
नया जमाना लाने के, संकल्पों में खप जाऊँ मैं॥
निज दोषों के जानकार हम,
हमें सुधर अब जाना है।
मन जीवन कुरुक्षेत्र मनुज का,
शूरवीर कहलाना है।
अंतस् फैले हुए तमस् में, ज्ञान का दीप जलाऊँ मैं।
नया जमाना लाने के, संकल्पों में खप जाऊँ मैं॥
सद्विचार, सद्भाव और,
सद्ज्ञान यहाँ फैलाना है।
गुरुवर के जीवन जीने की,
कला आज सिखलाना है।
बदला है दुनिया को तुमने, तुम पर बलि-बलि जाऊँ मैं।
नया जमाना लाने के, संकल्पों में खप जाऊँ मैं॥

—शोभाराम शशांक

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

' युवा सशक्तीकरण समारोह ' गांधी मैदान – पटना (बिहार) में युवाओं की अभूतपूर्व भागीदारी

विशाखापट्टनम (आंध्रप्रदेश) में अंतरराष्ट्रीय रोटरी क्लब द्वारा आयोजित समारोह में 'मानवीय उत्कर्ष' विषय पर प्रतिकुलपति – देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा उद्बोधन

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-03-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

प्रांतीय नारी सशक्तीकरण चेतना शिविर रायपुर (छत्तीसगढ़) में सफलतापूर्वक संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org